Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हिंदी भाषा का विकास

Hindi Bhasha ka Vikas

by

Sham Sunder.

S.R.K.R.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

Price Rs. 1/10/-

साहित्य-रत्न-माला

हिन्दी में ऐसी पुस्तक-मालाएँ बहुत ही कम हैं जिनकी सभी पुस्तकें विषय, उनकी प्रतिपादन-शैली और भाषा आदि के विचार से उच्च कोटि के साहित्य में स्थान पा सकें। इसी अभाव की पूर्ति के लिये यह पुस्तक-माला प्रकाशित की जा रही है। इस पुस्तक-माला की सभी पुस्तकें सभी दृष्टियों से उच्च कोटि की और स्थायी साहित्य में परिगणित होने के योग्य होती हैं। इसमें केवल लब्ध-प्रतिष्ठ लेखकों के लिखे हुए साहित्य, विज्ञान, राजनीति, अर्थ-शास्त्र, इतिहास आदि उपयोगी विषयों के अच्छे अच्छे ग्रन्थ ही प्रकाशित होंगे। जो लोग १) प्रवेश शुल्क देकर स्थायी ग्राहकों में नाम लिखावेंगे, उनसे पुस्तकों का डाक व्यय न लिया जायगा।

रामचंद्र वर्म्मा
साहित्य-रत्न-माला कार्य्यालय,
बनारस सिटी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रकीर्णक—२

हिंदी भाषा का विकास

लेखक

श्यामसुंदरदास बी० ए०

फेलो और अध्यापक काशी विश्वविद्यालय,
स्थायी सभासद और मंत्री, काशी नागरीप्रचारिणी सभा

प्रकाशक

रामचन्द्र वर्म्मा

साहित्य-रत्न-माला कार्य्यालय
बनारस सिटी।

SPS
809 S 32 H
6450

पहली बार १०५० } चैत्र सं० १९८१ 1924 { मूल्य ॥=)

Sri Pratap Singh Public Library Srinagar

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गणपति कृष्ण गुर्जर द्वारा
श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, बनारस सिटी में मुद्रित । ११६८–२४

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

निवेदन

यद्यपि अब तक हिंदी भाषा के इतिहास के संबंध में कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, पर उनमें से अधिकांश को छपे १०, १५ वर्ष हो चुके हैं और इस बीच में इस भाषा के विकास के संबंध में हमारा ज्ञान बहुत बढ़ गया है। दूसरे, अन्य पुस्तकों में भाषा और साहित्य में कोई भेद ही न मानकर दोनों के उद्धरण देकर तथा ग्रंथकर्त्ताओं के सन् संवत् देकर उन्हें इतिहास का नाम दे दिया गया है। भाषा के इतिहास और साहित्य के इतिहास में बड़ा भेद है। दोनों को एक मानना सर्वथा अनुचित है। साहित्य के इतिहास के अंतर्गत भावों और विचारों के विकास का विवेचन होना चाहिए और भाषा के इतिहास में उसके विकसित होने के ढंग पर विचार होना चाहिए। इस अवस्था में दोनों को एक मान लेने से दोनों में से किसी के भी तथ्य का यथार्थ विवेचन नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त केवल ग्रंथकारों की कृतियों से उद्धरण देकर उनका समय निरूपण करना ही इतिहास नहीं कहा जा सकता; उसे सूची मात्र कहना अधिक उपयुक्त होगा। मेरे इस कहने का तात्पर्य्य इतना ही है कि इस समय हिंदी भाषा तथा हिंदी साहित्य के विकास के उपयुक्त इतिहास

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की बहुत आवश्यकता है। भाषा-विज्ञान नामक ग्रंथ में मैंने हिंदी भाषा के विकास पर विचार किया है। यह अंश भाषा-विज्ञान की दृष्टि से लिखा गया है और मेरी समझ में ऐसा ही होना भी चाहिए। इसलिये उस पुस्तक से हिंदी के इतिहास का कुल अंश लेकर 'हिंदी भाषा का विकास' नाम से यह पुस्तक प्रस्तुत की गई है। हिंदी भाषा के इतिहास का जो अभाव है, आशा है, यह पुस्तक उसकी पूर्ति करेगी; और हिंदी के विद्वान् इस ढंग पर अन्य पुस्तकें लिखकर भाषा-भंडार के इस अंग को विशेष समृद्ध कर सकेंगे।

२५ अप्रैल
१९२४

श्यामसुंदरदास।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विषय-सूची

विषय-प्रवेश	१—३
भारतवर्ष में आर्य्यों का आगमन	३—५
प्राचीन आर्य्यों की भाषा	५—७
संस्कृत का प्रवाह	७—७
वैदिक भाषा और संस्कृत	७—९
प्राकृत	९—११
दूसरी प्राकृत	११—१३
पैशाची प्राकृत	१३—१५
अपभ्रंश	१५—१६
पुरानी हिंदी	१६—१९
अंतरंग और बहिरंग भाषाएँ	१९—१९
दोनों भाषाओं में भेद	२०—२१
भाषाओं का वर्गीकरण	२१—२२
पश्चिमी हिंदी	२२—२५
बिहारी भाषा	२५—२८
पूर्वी हिंदी	२८—३०
धातु-भेद	३०—३३
शब्द-भेद	३३—३७
विदेशी प्रभाव	३७—४४
प्राचीन भारतीय भाषाओं का प्रभाव ...	४४—४६

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हिंदी का नामात्मक विश्लेषण ... ४६—४९
हिंदी में स्वराघात ... ... ४९—५०
हिंदी के विकास की अवस्थाएँ ... ... ५०—५६
हिंदी की उपभाषाएँ या बोलियाँ
(१) राजस्थानी
(२) अवधी
(३) व्रज भाषा
(४) बुँदेली
(५) खड़ी ... ... ५६—९७
व्रज भाषा, अवधी तथा खड़ी बोली का तारतम्य ९७—११०
विभक्ति ... ... ११०—१२१
सर्वनाम ... ... १२१—१२५
क्रियाएँ ... ... १२५—१३२

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हिंदी भाषा का विकास

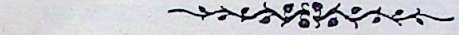

विषय प्रवेश

संसार में जितनी भाषाएँ हैं, सब का इतिहास बड़ा ही मनोरंजक तथा चिताकर्षक होता है। परंतु जो भाषाएँ जितनी ही प्राचीन होती हैं और जिन्होंने अपने जीवन में जितने उलट-फेर देखे होते हैं, वे उतनी ही अधिक मनोरंजक और चित्ताकर्षक होती हैं। इस विचार से भारतीय भाषाओं का इतिहास बहुत कुछ मनोरंजक और मनोहर है। भारतवर्ष ने आज तक कितने परिवर्तन देखे हैं, यह इतिहास-प्रेमियों से छिपा नहीं है। राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक परिवर्तनों का प्रभाव किसी जाति की स्थिति ही पर नहीं पड़ता, वरन् उसकी भाषा पर भी बहुत कुछ पड़ता है। भिन्न भिन्न जातियों का संसर्ग होने से परस्पर भावों और उन भावों के द्योतक शब्दों का आदान-प्रदान होता है तथा शब्दों के उच्चारण में भी कुछ कुछ विकार हो जाता है। इसी कारण के वशीभूत होकर भाषाओं के रूप का परिवर्तन हो जाता है और साथ ही उनमें नए नए शब्द भी आ जाते हैं। इस अवस्था में यदि वृद्ध भारत की भाषाओं की आरंभ की अवस्था से लेकर वर्तमान अवस्था तक में यदि आकाश पाताल का अंतर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हो जाय, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इस अवस्था में यदि हम इस परिवर्तन का तथ्य जान सकें, तो हमारे लिये यह जितना मनोरंजक होगा, यह सहज ही ध्यान में आ सकता है।

भाषाओं में निरंतर परिवर्तन होता रहता है। यह उनके इतिहास को और भी जटिल पर साथ ही मनोहर बना देता है। भाषाओं के विकास की साधारणतः दो अवस्थाएँ मानी गई हैं—एक वियोगावस्था और दूसरी संयोगावस्था। वियोगावस्था में सब शब्द अपने अपने वास्तविक या आरंभिक रूप में अलग अलग रहते हैं और प्रायः किसी वाक्य में उनके संस्थान, अवधारण या स्वराघात से उनका पारस्परिक संबंध प्रकट होता है। क्रमशः परिवर्तन होते होते कुछ शब्द तो अपने आरंभिक रूप में रह जाते हैं और कुछ परिवर्तित होकर प्रत्यय, विभक्ति आदि का काम देने लगते हैं। फिर ये प्रत्यय आदि घिस घिसाकर मूल शब्द के साथ ऐसे मिल जाते हैं कि उनका अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व ही नहीं रह जाता। अर्थात् जो पहले स्वतंत्र रहकर भावों को प्रगट करते थे, वे अब संक्षिप्त तथा विकृत रूप धारण करके भावद्योतकता के सहायक मात्र रह जाते हैं। इस प्रकार भाषाएँ वियोगावस्था से संयोगावस्था में आ जाती हैं। पर जैसे जातियों की स्थिति में परिवर्तन होता रहता है, वैसे ही भाषाएँ भी एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाती रहती हैं। हमारा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विषय भाषाओं का विवरण उपस्थित करना नहीं है। हमें तो केवल इस बात पर विचार करना है कि कैसे हमारी हिंदी भाषा का विकास हुआ है। अतएव पहले हम भारतीय भाषाओं का प्राचीन अवस्था से लेकर अब तक का इतिहास संक्षेप में देकर तब मुख्य विषय पर आवेंगे।

भारतवर्ष में आर्यों का आगमन

यह बात प्रायः सर्व-सम्मत है कि प्राचीन भारतीय आर्य युरोप और एशिया की आधुनिक सीमा के आस पास के मैदानों में रहते थे। वहाँ से वे हिंदू-कुश और अफगानिस्तान के मार्ग से भारत में आए और पंजाब में बस गए थे। पर इससे यह अभिप्राय नहीं समझना चाहिए कि वे एक दम से बढ़ते हुए चले आए थे, और सीधे आकर पंजाब के मैदानों में बस गए थे। उन्हें मार्ग में ही कई पीढ़ियाँ, वरन् कदाचित् शताब्दियाँ लग गई थीं। इसके अतिरिक्त भारत में जो आर्य आए थे, उनके कई वर्ग अथवा जातियाँ थीं; और इसी कारण उन सबकी भाषाएँ भी संभवतः अलग अलग ही थीं। सब जातियाँ एक साथ भी नहीं आई थीं, वरन् समय समय पर आगे पीछे उनकी अनेक टोलियाँ आई थीं। यद्यपि ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव के कारण यह नहीं कहा जा सकता कि उन आर्यों की कब कब और कितनी टोलियाँ आई थीं, तथापि भिन्न भिन्न प्राचीन तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं के अनेक तत्वों का ध्यान रखते हुए विद्वानों ने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उन्हें दो मुख्य भागों में विभक्त किया है। कुछ टोलियाँ पहले कई बार में आई थीं और कुछ उनके कुछ समय के उपरांत। इन सब टोलियों की बोलियों में अंतर अवश्य था, पर वह अंतर बहुत अधिक नहीं था और उन सबकी बोलियाँ अनेक अंशों में एक दूसरी से संबद्ध थीं; क्योंकि वे एक ही मूल भाषा की भिन्न भिन्न शाखाएँ थीं। पहले आनेवाली टोलियों की बोली अलग थी और पीछे आनेवाली टोलियों की अलग। पहली बार कुछ टोलियों के आकर बस जाने के बहुत दिन पीछे दूसरी टोलियाँ आई थीं। उन दूसरी टोलियों के आने पर पहली टोलियाँ के लोग पूर्व, दक्षिण और पश्चिम की ओर इधर उधर फैल या हट गए और उनके स्थान पर पीछे से आनेवाली टोलियों के लोग बस गए थे। स्वयं वेदों के अनेक मंत्रों से भी यह बात सिद्ध होती है कि कुछ आर्यों के इस देश में आकर बस जाने के उपरांत उनपर नवीन आगंतुकों के कई आक्रमण हुए थे और दोनों में समय समय पर अनेक युद्ध भी हुए थे। यह तो निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि इस दूसरे दल ने किस मार्ग से भारत में प्रवेश किया था, पर फिर भी अनुमान से यह कहा जा सकता है कि वे लोग लद्दाख या गिलगित्त और चितराल की ओर से होकर आए होंगे। इस अनुमान के दो कारण हैं। एक तो यह कि काबुल और सिंध की तराइयों में पहले ही आर्य लोग आकर बसे हुए थे; और वहाँ इन दोनों के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

युद्ध आदि का कोई प्रमाण नहीं मिलता। और दूसरे यह कि पंजाब और लद्दाख के बीच के प्रदेश में भी ऐसी भाषाएँ बोलनेवाले लोग पाए जाते हैं, जिनका संबंध इन्हीं परवर्त्ती आगंतुकों की भाषाओं से है। इसके अतिरिक्त गिलगित्त और चितराल आदि प्रदेशों में दोनों प्रकार की भाषाएँ बोली जाती हैं। इन तथा दूसरे अनेक प्रमाणों से यही अनुमान होता है कि पहले कुछ आर्य काबुल और सिंध की तराइयों से आकर पंजाब में बसे थे। उनके उपरांत कुछ लोग लद्दाख और चितराल आदि के मार्ग से आए थे। ज्यों ज्यों इन परवर्त्ती आगंतुकों की संख्य बढ़ती गई, त्यों त्यों पूर्ववर्त्ती आगंतुक पूर्व, पश्चिम और दक्षिण की ओर फैलते गए। दोनों की भाषाएँ एक दूसरी से बहुत कुछ मिलती जुलती होने पर भी भिन्न थीं। इस भिन्नता अथवा अंतर के चिह्न आज कल की अनेक भाषाओं में पाए जाते हैं; और उन्हीं के आधार पर विद्वानों ने भारतीय आर्य भाषाओं के दो मुख्य विभाग किए हैं—एक अंतरंग भाषाएँ और दूसरी बहिरंग भाषाएँ। बहिरंग भाषाएँ पूर्ववर्त्ती आगंतुकों की भाषा के विकसित रूप हैं और अंतरंग भाषाएँ परवर्त्ती आगंतुकों की भाषा के। जहाँ इन दोनों भाषाओं का मेल होता है, वहाँ की भाषाएँ मध्यवर्त्ती कहलाती हैं।

प्राचीन आर्यों की भाषा का वास्तविक क्या रूप था, इसका पता लगाना बहुत कठिन है। उस प्राचीन भाषा की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कोई पुस्तक या लेख आदि नहीं मिलते। आर्य जाति की सब से प्राचीन पुस्तक, जो इस समय प्राप्त है, ऋग्वेद है। इसकी ऋचाओं की रचना भिन्न भिन्न समयों और भिन्न भिन्न स्थानों में हुई है। किसी में कंधार में बसनेवाले आर्य समूह के राजा दिवोदास का उल्लेख है और किसी में सिंधु नद के किनारे बसे हुए आर्यों के राजा सुदास का। अतएव वेदों में दिवोदास तथा सुदास के समयों के बने मंत्रों का समावेश है। साथ ही कुछ मंत्र कंधार में रचे गए, कुछ सिंधु के किनारे और कुछ यमुना के तटों पर। पीछे से जब सब मंत्रों का संपादन करके उनका क्रम लगाया गया, तब रचना-काल और रचना-स्थान का ध्यान रखकर यह कार्य नहीं किया गया था। यदि उस समय इन दोनों बातों का ध्यान रखा जाता, तो हम अत्यंत सुगमता से प्राचीनतम भाषा का नमूना उपस्थित कर सकते। फिर भी ध्यान देने से मंत्रों की भाषा में विभेद देख पड़ता है। इसमें संदेह नहीं कि प्राचीन समय में जब आर्य भारतवर्ष में आए, तब उनकी बोलचाल की भाषा ने कुछ कुछ साहित्यिक रूप धारण कर लिया था; पर बोलचाल की या लौकिक भाषाओं में अनेक भेद बने रहे। वेदों के संपादन-काल में मंत्रों का भाषा-विभेद बहुत कुछ दूर किया गया। तिस पर भी यह स्पष्ट है कि वेदों की भाषा के साथ ही साथ उस समय कुछ लौकिक अथवा देश-भाषाओं

प्राचीन आर्यों की भाषा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

का भी प्रचार था। इन्हीं में से किसी एक को लेकर वैदिक मंत्रों का संपादन किया गया और इस प्रकार उसे साहित्यिक रूप दिया गया। यही वैदिक भाषा आगे परिमार्जित और संशोधित होकर संस्कृत कहलाई।

संस्कृत का प्रवाह

भारत में आने पर आर्यों ने देखा कि हमारी भाषा में पूर्वागत आर्यों तथा भारत के आदिम निवासियों के संपर्क से कुछ नए शब्द आ रहे हैं तथा हमारे शब्दों के उच्चारण में भी किंचित् परिवर्तन हो रहा है। अतएव उन्होंने अपनी भाषा को सुरक्षित रखने के निमित्त उसका संस्कार किया और उसे 'संस्कृत' नाम दिया। अब आर्यों की 'संस्कृत' भाषा केवल साहित्य की भाषा हो गई, पर प्रचलित बोलचाल की भाषा का प्रभाव ज्यों का त्यों बना रहा। उसमें परिवर्तन होता गया और नए नए शब्दों तथा उच्चारणों का प्रवेश होता गया। उस समय के पढ़े लिखे लोग अपने व्यवहार के लिये 'संस्कृत' भाषा का ही उपयोग करते थे और 'प्राकृत' अथवा सर्वसाधारण की बोलचाल की भाषा का उपयोग करना उचित नहीं समझते थे। यही कारण है कि हमारा प्राचीन साहित्य प्रायः 'संस्कृत' भाषा में है।

वैदिक भाषा और संस्कृत

आर्यों की प्राचीन भाषा को हम दो मुख्य भागों में विभक्त कर सकते हैं—एक वैदिक भाषा और दूसरी संस्कृत। वैदिक भाषा के नमूने हमें पहले तो ऋग्वेद की संहिता में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मिलते हैं और आगे चलकर ब्राह्मण ग्रंथों तथा सूत्र ग्रंथों में। इसी भाषा के विकास से पीछे की संस्कृत का उदय हुआ था। कुछ विद्वानों का मत है कि वैदिक भाषा बोलचाल की भाषा थी; और जब उसने शुद्ध साहित्यिक रूप धारण किया, तब वह 'संस्कृत' नाम से अभिहित हुई। दूसरे लोगों का कहना है कि वैदिक काल में बोलचाल की जो भाषाएँ थीं, उन्हीं में से एक प्रधान भाषा को लेकर वेद-मंत्रों की रचना की गई; और अंत में जब वेद मंत्रों का संपादन किया गया, तब किंचित् परिमार्जित करके उसमें यथासंभव एकरूपता लाई गई। स्पष्ट प्रमाणों का अभाव है और दोनों मत अनुमान पर स्थित हैं। अतएव उनके विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना असंभव है। फिर भी दोनों मतों से यह तथ्य निकलता है कि वैदिक काल की बोलचाल की भाषा तथा संहिता की भाषा में यदि अंतर था, तो केवल नाम मात्र का। आगे चलकर जब वह वैदिक भाषा वैयाकरणों के पल्ले पड़ी और उसने साहित्यिक रूप धारण किया, तब वह पूर्ण, व्यवस्थित और परिमार्जित हो गई। महर्षि यास्क और महर्षि पाणिनि ने पहले उसे नियमों से बद्ध किया और तब महर्षि कात्यायन और महर्षि पतंजलि ने उसको शुद्ध साहित्यिक रूप दिया। महर्षि पाणिनि के समय में ऐसे बहुत से प्रयोग व्यवहार में थे, जो आगे चलकर अप्रचलित हो गए; और महर्षि कात्यायन तथा महर्षि पतंजलि के समय में कुछ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नए प्रयोग व्यवहार में आ गए तथा भाषा अधिक व्यवस्थित और स्थायी हो गई। उसका वही व्यवस्थित और स्थायी रूप संस्कृत के काव्य आदि ग्रंथों में वर्तमान है।

इस विषय में बड़ा विवाद है कि संस्कृत कभी बोलचाल की भाषा भी थी अथवा उसका प्रयोग केवल साहित्य में होता था। यास्क और पाणिनि भाषाओं के दो विभेदों का उल्लेख करते हैं जो पूर्व और उत्तर में बसनेवालों के व्यवहार में थे। कात्यायन और पतंजलि स्थानिक तथा प्रांतिक विभेदों का भी उल्लेख करते हैं। इससे यह अनुमान होता है कि ईसा से दो शताब्दी पूर्व संस्कृत का साहित्य में तो पूर्ण प्रचार था ही, बोलचाल में भी उसका व्यवहार था, पर वह संकुचित और सीमाबद्ध था। साथ ही सर्वसाधारण की बोलचाल की भाषा शिष्टों की भाषा से भिन्न थी।

प्राकृत

यह एक निश्चित बात है कि 'संस्कृत' की जननी वास्तव में प्राकृत भाषा है और आर्यों की बोलचाल की आरंभिक भाषा भी 'प्राकृत' थी, 'संस्कृत' नहीं। व्याकरण के नियमों से जकड़ी जाने पर संस्कृत भाषा एक प्रकार से स्थिर हो गई और उसमें किसी प्रकार की नवीनता के समावेश का अवकाश न रह गया। उसका रूप ज्यों का त्यों रह गया और उसी रूप में अब भी हम उसे साहित्यिक ग्रंथों में पाते हैं। यद्यपि लोगों ने समय समय पर प्राकृत को नियमित और बद्ध

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करने का प्रयत्न किया, तथापि बोलचाल की उस भाषा का प्रवाह ज्यों का त्यों चलता रहा, उसमें कोई रुकावट न हो सकी। यही 'प्राकृत' अथवा बोलचाल की आर्य भाषा क्रमशः आधुनिक भारतीय देश-भाषाओं के रूपों में प्रकट हुई।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, आरंभ से ही जन साधारण की बोलचाल की भाषा प्राकृत थी। बोलचाल की भाषा के प्राचीन रूप के ही आधार पर वेद-मंत्रों की रचना हुई थी और उसका प्रचार ब्राह्मण ग्रंथों तथा सूत्र ग्रंथों तक में रहा। पीछे से वह परिमार्जित होकर संस्कृत रूप में प्रयुक्त होने लगी। बोलचाल की भाषा का अस्तित्व नष्ट नहीं हुआ, वह भी बनी रही; पर इस समय हमें उसके प्राचीनतम उदाहरण उपलब्ध नहीं हैं। उसका सबसे प्राचीन रूप, जो इस समय हमें प्राप्त है, अशोक के लेखों तथा प्राचीन बौद्ध और जैन धर्मग्रंथों में है। उसी को हम प्राकृत का प्रथम रूप मानने के लिये बाध्य होते हैं। उस रूप को 'पाली' नाम दिया गया है। उसके अनंतर मध्य काल की प्राकृत और अंत में उत्तर काल की प्राकृत या अपभ्रंश का समय आता है। इसी उत्तर काल की प्राकृत या अपभ्रंश के अनंतर आधुनिक देश-भाषाओं का प्रादुर्भाव हुआ है।

पहली प्राकृत या पाली के उदाहरण हमें प्राचीन बौद्ध और जैन सूत्र ग्रंथों तथा शिलालेखों में मिलते

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हैं। शिलालेखों में अशोक के लेख बड़े महत्व के
पहली प्राकृत या पाली हैं। ये खरोष्ट्री और ब्राह्मी दो लीपियों में लिखे हुए मिलते हैं। शहबाजगढ़ी और मानसेरा के लेख तो खरोष्ट्री में लिखे हुए हैं और शेष सब ब्राह्मी लिपि में हैं। इन सब लेखों का विवेचन करने पर यह स्पष्ट प्रकट होता है कि अशोक के समय में कम से कम चार बोलियाँ प्रचलित थीं। उनमें से सबसे मुख्य मगध की पाली थी, जिसमें पहले पहल ये लेख लिखे गए होंगे; और उन्हीं के आधार पर गिरनार, जौगढ़ और मानसेरा के लेख उपस्थित किए गए हैं। यद्यपि एक ओर शहबाजगढ़ी और गिरनार के लेखों की भाषा में और दूसरी ओर मानसेरा, धौली, जौगढ़ आदि के लेखों में बहुत कुछ समानता देख पड़ती है, और इसी समानता के आधार पर कुछ विद्वानों ने यह माना है कि अशोक के समय की पाली दो मुख्य भागों में विभक्त हो सकती है, तथापि इनमें विभन्नता कम नहीं है। अतएव इन्हें एक ही कहना ठीक नहीं।

पाली के अनंतर हमें साहित्यिक प्राकृत के दर्शन होते हैं। इसके चार मुख्य भेद माने गए हैं—महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी और अर्ध-मागधी। इनमें से
दूसरी प्राकृत महाराष्ट्री सब से प्रधान मानी गई है। प्राकृत के वैयाकरणों ने महाराष्ट्री के विषय में विशेष रूप से लिखा है और दूसरी प्राकृतों के विशेष नियम देकर यही

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लिख दिया है कि शेष सब बातें महाराष्ट्री के समान हैं। प्राकृत का अधिकांश साहित्य भी महाराष्ट्री में ही लिखा मिलता है। शौरसेनी मध्य देश की प्राकृत है और शूरसेन देश (आधुनिक व्रज मंडल) में इसका प्रचार होने के कारण यह शौरसेनी कहलाई। मध्य देश में ही साहित्यिक संस्कृत का अभ्युदय हुआ था और यहीं की बोलचाल की भाषा से साहित्य की शौरसेनी प्राकृत का जन्म हुआ। अतएव यह अनिवार्य था कि इस प्राकृत पर संस्कृत का सबसे अधिक प्रभाव पड़ता। इसी कारण शौरसेनी प्राकृत और संस्कृत में बहुत समानता देख पड़ती है। मागधी का प्रचार मगध (आधुनिक बिहार) में था। शौरसेनी और मागधी के बीच की भाषा अर्ध-मागधी थी। इससे यह अनुमान हो सकता है कि वह शौरसेनी और मागधी के मिश्रण से बनी होगी; पर वास्तव में यह बात नहीं है। अनेक अंशों में वह मागधी और महाराष्ट्री प्राकृतों से मिलती है और कुछ अंशों में उसका इनसे विभेद भी है, पर शौरसनी से उसका बहुत विभेद है। अतएव जहाँ तक प्राकृत भाषाओं का संबंध है, अर्ध-मागधी को मागधी और शौरसेनी के बीच की भाषा कहना ठीक नहीं है। आधुनिक देश भाषाओं के विचार से पश्चिमी हिंदी और बिहारी के बीच की भाषा पूर्वी हिंदी है और उसमें दोनों के अंश वर्तमान हैं। आधुनिक भाषाओं के विवेचन के आधार पर अंतरंग, बहिरंग और मध्यवर्ती भाषाओं के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

संगत जान पड़ता है। यदि हम अर्ध मागधी को मध्यवर्ती भाषाओं की स्थानापन्न मान लें, तो प्राकृत काल की भाषाओं का विभाग इस प्रकार होगा—

बहिरंग प्राकृत—महाराष्ट्री और मागधी।
मध्यवर्ती प्राकृत—अर्ध-मागधी।
अंतरंग प्राकृत—शौरसेनी।

अनेक विद्वानों ने पैशाची भाषा को भी प्राकृतों में गिना है। वररुचि ने प्राकृतों के अंतर्गत चार भाषाएँ गिनी हैं—महाराष्ट्री, पैशाची, मागधी और शौरसेनी।

पैशाची प्राकृत

हेमचंद्र ने केवल तीन प्रकार की प्राकृतों के नाम गिनाए हैं—अर्श (अर्थात् अर्धमागधी), चूलिका-पैशाचिका और अपभ्रंश। इस भाषा का दूसरा नाम भूतभाषा भी है, जो गुणाढ्य की 'बड्डकहा' (बृहत्कथा) से अमर हो गई है; पर यह ग्रंथ इस समय नहीं मिलता। हाँ, दो कश्मीरी पंडितों क्षेमेंद्र और सोमदेव के किए इसके संस्कृत अनुवाद अवश्य मिलते हैं। कश्मीर या उत्तरी प्रांत पिशाच या पिशाश देश कहलाता था और काश्मीर ही में बृहत्कथा का अनुवाद मिलने के कारण पैशाची भाषा वहीं की भाषा मानी जाती है। कुछ लोग इसे उतर-पश्चिम प्रदेश की और कुछ राजपूताने की भाषा भी मानते हैं। मार्कंडेय और रामशर्मा ने अपने व्याकरणों में इस भाषा का विशेष रूप से उल्लेख किया है। डाक्टर ग्रियर्सन ने अपने एक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लेख में रामशर्मा के प्राकृत-कल्पतरु के उस अंश का विशेष रूप से वर्णन किया है, जिसमें पैशाची भाषा का विवरण है। उस लेख में बतलाया गया है कि रामशर्मा के अनुसार पैशाची या पैशाचिका भाषा के दो मुख्य भेद हैं—एक शुद्ध और दूसरा संकीर्ण। पहली तो शुद्ध पैशाची, जैसा कि उसके नाम से ही प्रकट होता है, और दूसरी मिश्र पैशाची है। पहली के सात और दूसरी के चार उपभेद गिनाए गए हैं जो इस प्रकार हैं—

(१) कैकेय पैशाचिका
(२) शौरसेनी पैशाचिका
(३) पांचाल पैशाचिका
(४) गौड़ पैशाचिका
(५) मागध पैशाचिका
(६) ब्राचड़ पैशाचिका और
(७) सूक्ष्मभेद पैशाचिका

संकीर्ण पैशाचिका पहले दो प्रकार की कही गई है—शुद्ध और अशुद्ध। फिर शुद्ध के दो उपभेद किए गए हैं—एक भाषा-शुद्ध और दूसरी पद-शुद्ध। पद-शुद्ध पैशाचिका के पुनः दो भेद किए गए है—अर्ध-शुद्ध और चतुष्पद शुद्ध। संक्षेप में इस पैशाचिका के भेद और उपभेद इस प्रकार हैं—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

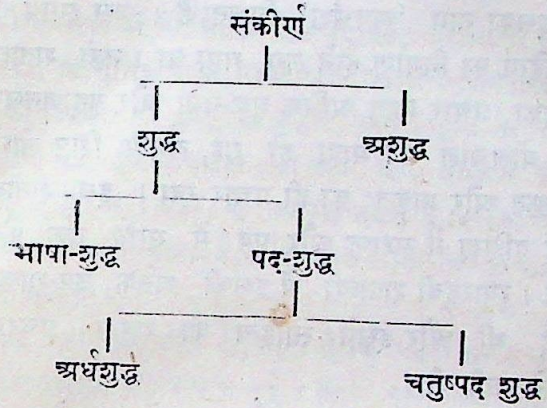

ऊपर हम प्राकृत की पूर्व-कालिक और मध्यकालिक अवस्थाओं का विवेचन कर चुके हैं। यह एक निर्विवाद सिद्धांत है कि बोलचाल की भाषा में जितना शीघ्र परिवर्तन होता है, उतना शीघ्र साहित्य की भाषा में नहीं होता। जब प्राकृत ने साहित्य में पूर्णतया प्रवेश पा लिया और वह शिष्ट लोगों के पठन-पाठन और ग्रंथ-निर्माण की भाषा हो गई, तब बोलचाल की भाषा अपनी स्वतंत्र धारा में बहती हुई जनसमुदाय के पारस्परिक भाव विनियम में सहायता देती रही। इसी बोलचाल की भाषा को वैयाकरणों ने 'अपभ्रंश' नाम दिया है। प्राचीन ग्रंथों के विवेचन से यह पता लगता है कि ईसा की दूसरी या तीसरी शताब्दी में अपभ्रंश 'अभीरी' नाम से प्रसिद्ध थी और सिंध, मुलतान तथा उत्तरी पंजाब में बोली जाती थी। ईसा की छठी शताब्दी

अपभ्रंश

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

में इसका नाम 'अपभ्रंश' मिलता है। उस समय इसके साहित्य का निर्माण होने लग गया था। नवीं शताब्दी में इसका प्रचार बहुत अधिक बढ़ गया और यह जनसमुदाय की बोलचाल की भाषा हो गई, यद्यपि शिष्ट लोगों में संस्कृत और प्राकृत का ही प्रचार रहा। इस शताब्दी में यह दक्षिण में सुराष्ट्र और पूर्व में मगध तक फैल गई थी। ग्यारहवीं शताब्दी में इसकी अनेक उप-शाखाएँ हो गई थीं और इसमें साहित्य की रचना प्रचुरता से होने लगी थी।

अपभ्रंश के तीन मुख्य उपभागों का उल्लेख मिलता है—नागर, उपनागर और ब्राचड़। इनमें नागर या शौरसेनी अपभ्रंश सब से मुख्य है और इसका मध्य देश तथा साहित्य में प्रचार था। ब्राचड़ सिंध में प्रचलित थी और उपनागर नागर और ब्राचड़ भाषाओं का मिश्रणी था और इसका प्रचार पश्चिमी राजपूताने और दक्षिणी पंजाब में था। कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि जितने प्रकार की प्राकृत थी, उतने ही प्रकार की अपभ्रंश भी थी और देशभेद के कारण ही उसके भेद उपभेद हुए थे।

आगे चलकर प्राकृत की भाँति अपभ्रंश भी व्याकरण के नियमों से जकड़ दी गई और केवल साहित्य में व्यवहृत होने लगी। पर उसका स्वाभाविक प्रवाह चलता ही रहा। क्रमशः वह भाषा एक ऐसे रूप को पहुँची जो कुछ अंशों में तो हमारी

पुरानी हिंदी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आधुनिक भाषाओं से मिलता है और कुछ अंशों में अपभ्रंश से। आधुनिक हिंदी भाषा और शौरसेनी अपभ्रंश के मध्य की अवस्था को कुछ विद्वानों ने 'पुरानी हिंदी' भी नाम दिया है। पर इस अपभ्रंश का कब अंत होता है और पुरानी हिंदी का कहाँ से आरंभ होता है, इसका ठीक ठीक निर्णय करना कठिन है, अभी कोई सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि पहले मूल भाषा से वैदिक संस्कृत की उत्पत्ति हुई। फिर उसने कट छँट या सुधरकर साहित्यिक रूप धारण किया; पर साथ ही वह बोलचाल की भाषा बनी रही। प्राचीन काल की बोलचाल की भाषा पहली प्राकृत कहलाई। आगे चलकर वह दूसरी प्राकृत के रूप में परिवर्त्तित हुई, जिसकी तीन अवस्थाओं का हम उल्लेख कर चुके हैं। जब इन भिन्न भिन्न अवस्थाओं की प्राकृतें भी वैयाकरणों के अधिकार में आकर साहित्यिक रूप धारण करने लगीं, तब अंत में इस मध्य प्राकृत से तीसरी प्राकृत या अपभ्रंश का उदय हुआ। जब इसमें भी साहित्य की रचना आरंभ हुई, तब बोलचाल की भाषा से आधुनिक देश-भाषाओं का आरंभ हुआ। ये आधुनिक देश-भाषाएँ भी अब क्रमशः साहित्य का रूप धारण करती जाती हैं। इस इतिहास का यहाँ तक विवेचन करके यह कहना पड़ता है कि बोलचाल की भाषा तथा साहित्य की भाषा में जब विशेष अंतर होने लगता है, तब

२२२.
CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वे भिन्न भिन्न मार्गों पर लग जाती हैं और उनका पृथक् पृथक् विकास होने लगता है।

ऊपर हम प्राचीन आर्य भाषाओं का विवरण दे चुके हैं और यह बतला चुके हैं कि किस प्रकार आर्य पंजाब में आकर बसे थे। उनके पंजाब पहुँचने के समय ही उनकी भाषा ने वह रूप धारण किया था, जिसे आजकल लोग प्राचीन संस्कृत कहते हैं। पर उस समय भी उसके कई प्रांतीय भेद और उपभेद थे। आज कल भारतवर्ष में जितनी आर्य भाषाएँ बोली जाती हैं, उन सबकी उत्पत्ति उन्हीं प्रांतीय भेदों और उपभेदों से हुई है। हमारे प्राचीन धर्म-ग्रंथों में जो संस्कृत भाषा मिलती है, उसका विकास भी उन्हीं भेदों में से किसी एक भेद से हुआ था।

भाषातत्व के ज्ञाताओं का अनुमान है कि जो आर्य दक्षिणवाले हिंदूकुश के मार्ग से भारत में आए थे, उनके अतिरिक्त कुछ थोड़े से आर्य ऐसे भी थे, जो उत्तर की ओर वक्षु नदी के तट पर अथवा चितराल और गिलगित्त की ओर बढ़ गए थे, और तब वहाँ से दक्षिण की ओर फैले थे। उनकी भाषाओं की गणना भी भारतीय आर्य शाखा के अंतर्गत ही होती है, पर संस्कृत से उनका कोई संबंध नहीं है। इन प्रदेशों के उत्तर में पामीर देश है, जहाँ की भाषा ईरानी है। इस ईरानी भाषा का इन प्रदेशों की भाषा पर थोड़ा बहुत प्रभाव भी देखने में आता है। यहीं से भारतीय आर्य भाषाओं के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वे दो मुख्य उपविभाग होते हैं, जिनमें से एक संस्कृत-जन्य और दूसरा अ-संस्कृत कहलाता है।

अंतरंग और बहिरंग भाषाएँ

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, आधुनिक भारतीय भाषाओं के विवेचन से सिद्ध होता है कि कुछ भाषाएँ तो पूर्वागत आर्यों की भाषाओं से संबंध रखती हैं, जो इस समय भी मध्य देश के चारों ओर फैली हुई हैं, और कुछ परागत आर्यों की भाषाओं से संबद्ध हैं। इस आधार पर विद्वानों ने भारत की आधुनिक भाषाओं के दो मुख्य विभाग किए हैं। उनमें से एक विभाग की भाषाएँ तो उन प्रदेशों में बोली जाती हैं जो इस मध्य देश के अंतर्गत हैं; और दूसरे विभाग की भाषाएँ उन प्रदेशों के चारों ओर के देशों में अर्थात् कश्मीर, पश्चिमी पंजाब, सिंध, महाराष्ट्र, मध्य भारत, उड़ीसा, बिहार, बंगाल तथा आसाम में बोली जाती हैं। एक गुजरात प्रदेश ही ऐसा है, जिसमें बोली जानेवाली भाषा का संबंध बहिरंग भाषाओं से नहीं, वरन् अंतरंग भाषाओं से है; और इसका कारण कदाचित् यह है कि किसी समय इस गुजरात प्रदेश पर मथुरावालों ने विजय प्राप्त की थी और मथुरा नगरी उसी मध्य देश के अंतर्गत थी।

इन अंतरंग और बहिरंग भाषाओं में कई ऐसे प्रत्यक्ष अंतर और विरोध हैं, जिनसे इन दोनों का पार्थक्य स्पष्ट प्रकट होता है। पहले तो दोनों के उच्चारण में ही एक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दोनों भाषाओं में भेद

विशेष अंतर है। अंतरंग भाषाओं में बहुधा "स" का ठीक उच्चारण होता है, पर बहिरंग भाषाओं के भाषी शुद्ध दंत्य "स" का उतना स्पष्ट उच्चारण नहीं कर सकते। वे उसका उच्चारण कुछ कुछ तालव्य "श" अथवा मूर्द्धन्य "ष" के समान करते हैं। ईरानी शाखा की फारसी आदि भाषाओं में बहुत प्राचीन काल से "स" के स्थान में "ह" कर देने की प्रवृत्ति देखने में आती है; जैसे, सप्त के स्थान में हफ्त। यही बात बहिरंग भाषाओं में भी पाई जाती है। पंजाबी और सिंधी में "कोस" का "कोह" हो जाता है। इधर बँगला तथा मराठी में दंत्य "स" के स्थान में प्रायः "श" अथवा "ष" बोला जाता है। पूर्वी बंगाल तथा आसाम में वही "च" और "स" के बीच का एक नया उच्चारण हो जाता है; और पश्चिमी सीमा-प्रांत तथा कश्मीर आदि में वही शुद्ध "ह" हो जाता है। दोनों विभागों की संज्ञाओं के रूपों में भी एक विशेष अंतर देखने में आता है। इन भाषाओं के प्रायः सभी मूल प्रत्यय नष्ट हो गए हैं और उनका काम विभक्तियों से लिया जाता है, जो शब्दों के साथ जोड़ी जाती हैं; जैसे का, को, से, ने इत्यादि। पर बहिरंग भाषाएँ इनकी अपेक्षा कुछ अधिक विकसित हैं।

भाषा-विज्ञान का सिद्धान्त है कि भाषाएँ पहले वियोगावस्था में रहती हैं; और तब क्रमशः विकसित होते होते

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

संयोगावस्था में आती हैं। प्रायः सभी अंतरंग भाषाएँ इस समय वियोगावस्था या विच्छेदावस्था में हैं; पर बहिरंग भाषाएँ विकसित होते होते संयोगात्मक हो गई हैं। बहिरंग भाषाओं और अंतरंग भाषाओं में एक और अंतर यह है कि बहिरंग भाषाओं की भूतकालिक क्रियाओं के साधारण रूपों से ही उनका पुरुष और वचन मालूम हो जाता है; पर अंतरंग भाषाओं में सभी पुरुषों में उन क्रियाओं का रूप एक सा रहता है। हिंदी में "मैं गया" "वह गया" और "तू गया" सब में "गया" समान है; पर मराठी में "गेलों" से ही "मैं गया" का बोध होता है; और "गेला" से "वह गया" का। बँगला का "मारि-लाम्" शब्द भी यही सूचित करता है कि उसका कर्त्ता प्रथम पुरुष है। तात्पर्य यह कि बहिरंग भाषाओं की भूत-कालिक क्रियाओं में सर्वनाम भी अंतर्भुक्त होता है; पर अंतरंग भाषाओं में यह बात नहीं पाई जाती।

अंतरंग भाषाओं के दो मुख्य विभाग हैं—एक पश्चिमी और दूसरा उत्तरी। पश्चिमी विभाग में पश्चिमी हिंदी, राजस्थानी, गुजराती और पंजाबी ये चार भाषाएँ हैं; और उत्तरी विभाग में पश्चिमी पहाड़ी, मध्य पहाड़ी और पूर्वी पहाड़ी ये तीन भाषाएँ हैं। बहिरंग भाषाओं के तीन मुख्य विभाग हैं—उत्तर-पश्चिमी, दक्षिणी और पूर्वी। इनमें से उत्तर-पश्चिमी विभाग में कश्मीरी, कोहिस्तानी, पश्चिमी पंजाबी और

भाषाओं का वर्गीकरण

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सिंधी ये चार भाषाएँ हैं। दक्षिणी विभाग में केवल एक मराठी भाषा है; और पूर्वी विभाग में उड़िया, बिहारी, बँगला और आसामी ये चार भाषाएँ हैं। जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, इन अंतरंग और बहिरंग भाषाओं के बीच में एक और विभाग है, जो मध्यवर्ती कहलाता है और जिसमें पूर्वी हिंदी है। इस मध्यवर्ती विभाग में अंतरंग भाषाओं की भी कुछ बातें हैं और बहिरंग भाषाओं की भी कुछ बातें। यहाँ हम इनमें से केवल पश्चिमी हिन्दी, बिहारी और पूर्वी हिन्दी के सम्बन्ध की कुछ मुख्य मुख्य बातें पहले दे देना चाहते हैं।

पश्चिमी हिंदी

पश्चिमी हिंदी पश्चिम में पंजाब के सरहिंद नामक स्थान से पूर्व में प्रयाग तक बोली जाती है। उत्तर में इसका विस्तार हिमालय की तराई तक और दक्षिण में बुंदेलखंड और मध्य प्रदेश के कुछ उत्तरी भागों तक है। इसकी हिंदी या हिंदुस्तानी, व्रज भाषा, कन्नौजी और बुँदेली आदि कई मुख्य बोलियाँ हैं जिनमें दक्षिण-पूर्वी पंजाब की बाँगड़ू और पूर्वी राजपूताने की कुछ बोलियाँ भी सम्मिलित की जा सकती हैं। आधुनिक हिन्दी की इन बोलियों के संबंध में पूरा विवेचन आगे चलकर किया जायगा।

शुद्ध हिंदी भाषा दिल्ली और मेरठ के आस पास के प्रांतों में बोली जाती है और यही प्रायः सारे उत्तरी भारत की साहित्य की भी भाषा है। हिंदी और उर्दू का समस्त

6450.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आधुनिक साहित्य इसी हिंदुस्तानी या शुद्ध हिंदी बोली में है। रूहेलखंड में पहुँचकर यही भाषा कन्नौजी का रूप धारण कर लेती है, अंबाले से आगे बढ़ने पर पंजाबी हो जाती है और गुड़गाँव के दक्षिण पूर्व में व्रज भाषा बन जाती है। यहाँ हम यह भी बतला देना चाहते हैं कि इस भाषा का यह हिंदुस्तानी नाम अँगरेजों का रखा हुआ है; इसका शुद्ध भारतीय नाम हिंदी ही है। उर्दू या रेखता और दक्खिनी आदि इसके वही रूपांतर हैं, जो इसमें संस्कृत शब्दों की न्यूनता और अरबी फारसी शब्दों की अधिकता करने से प्राप्त होते हैं। उत्तरी भारत के मुसलमानों ने इसे अपनाने के लिये उर्दू या रेखता नाम दे दिया है और दक्षिण भारत के मुसलमान इसे दक्खिनी कहते हैं। पर हैं ये सब शुद्ध हिंदी के ही रूपान्तर मात्र। कुछ लोग स्वयं "हिंदी" शब्द को फारसी बतलाते हैं और कहते हैं कि इसमें हिंद शब्द के अंत में जो "ई" है, वह फारसी की "याए निस्बती" है। ऐसी दशा में प्रश्न हो सकता है कि फिर अवधी, बिहारी और मराठी आदि में जो ई है, वह कैसी है? यह विषय हमारे प्रस्तुत प्रसंग से कुछ बाहर है, इसलिये इसे हम यहीं छोड़ देते हैं। यहाँ हम केवल इतना ही कहना पर्याप्त समझते हैं कि यह हमारी भाषा है और इस समय सारे भारत की राष्ट्र-भाषा हो रही है।

इटावा, मथुरा और आगरा आदि व्रज भाषा के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रधान क्षेत्र हैं। यह भाषा ग्वालियर के उत्तर-पश्चिमी विभाग और भरतपुर तथा काँकरौली में भी बोली जाती है। अधिक पश्चिम अथवा दक्षिण जाने पर यही राजस्थानी का रूप धारण कर लेती है। इस भाषा की उत्पत्ति शौरसेनी प्राकृत से है। इसका प्राचीन प्रसिद्ध साहित्य अवधी के साहित्य से भी अधिक और बढ़ा चढ़ा है; और उत्तर भारत के इधर चार पाँच सौ वर्षों के अधिकांश कवियों ने इसी भाषा में कविताएँ की हैं। उनमें से सूर तुलसी, बिहारी आदि अनेक ऐसे कवि भी हो गए हैं, जिन्होंने अपनी कविताओं के कारण ही बहुत दूर दूर तक ख्याति प्राप्त कर ली है और जो इसी कारण अमर हो गए हैं।

कन्नौजी भाषा का विस्तार इटावे और प्रयाग के बीच के प्रदेश में है। यह हरदोई और उन्नाव के भी कुछ विभागों में बोली जाती है। इसे व्रज भाषा का ही एक विकृत रूप समझना चाहिए। इसका साहित्य प्रायः नहीं के समान है; क्योंकि इसके अधिकांश भाषियों ने व्रज भाषा में ही कविता की है। यह भाषा कुछ जल्दी जल्दी नष्ट होती हुई दिखाई देती है; क्योंकि इधर थोड़े दिनों के अंदर ही इसके अनेक प्रयोग नष्ट हो गए हैं। अब अन्यान्य अनेक प्रांतीय बोलियों की तरह यह भी शुद्ध हिंदी या हिंदुस्तानी का रूप धारण कर रही है।

बुंदेलखंड और उसके आस पास जालौन, झाँसी,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हमीरपुर और मध्य प्रदेश के कुछ जिलों में बुँदेली बोली जाती है। पर बाँदे की बोली बुँदेली नहीं, बघेली है। पन्ना के महाराज छत्रसाल के समय से बुँदेली में भी कुछ साहित्य पाया जाता है। इस प्रकार ब्रज भाषा, कन्नौजी और बुँदेली का आपस में बहुत कुछ संबंध है।

पंजाब के दक्षिण-पूर्व में जो भाषा बोली जाती है, उसके कई स्थानिक नाम हैं। हिसार और झींद के आस पास के हरियाना प्रांत की बोली "हरियानी" कहलाती है; और रोहतक, दिल्ली तथा करनाल की भाषा हिंदी मानी जाती है। इसके भाषी मुख्यतः जाट हैं, इसलिये इसे जाटू भी कहते हैं। जिस प्रांत में यह बोली जाती है, उसका नाम बाँगड़ है, इसलिये इसे बाँगड़ भी कहते हैं। इसका यही नाम कुछ अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। इसे पश्चिमी हिंदी, पंजाबी और मारवाड़ी का मिश्रण कहना चाहिए और इसके चारों ओर यही तीनों भाषाएँ बोली भी जाती हैं।

बिहारी भाषा

सारे बिहार प्रदेश और उसके आस पास संयुक्त-प्रदेश, छोटा नागपुर और बंगाल में कुछ दूर तक बिहारी भाषा बोली जाती है। यद्यपि बँगला और उड़िया की भाँति बिहारी भाषा भी मागध अपभ्रंश से ही निकली है, तथापि अनेक कारणों से इसकी गणना हिंदी में होती है और ठीक होती है। इसका मुख्य हेतु कदाचित् यही है कि बिहारवालों को उनके पूर्वी पड़ोसी बंगाली आदि सदा से कष्ट ही पहुँचाते आए हैं; और उनके

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पश्चिमी पड़ोसी संयुक्त-प्रांतवालों ने उन्हें सदा अपनाया है और उनकी सहायता की है। इस भाषा का हिंदी के अंतर्गत माना जाना इसलिये ठीक है कि बँगला, आसामी और उड़िया आदि की भाँति इसमें "स" का उच्चारण "श" नहीं होता, बल्कि शुद्ध "स" होता है; पर बिहारी या कैथी लिपि में लिखा अब तक "श" ही जाता है, "स" अथवा "ष" के लिये उसमें कोई चिह्न ही नहीं है! इसके अतिरिक्त इसकी बहुत सी बातें पूर्वी हिंदी से बहुत अधिक मिलती जुलती हैं। पहले जिन स्थानों में मागध अपभ्रंश बोली जाती थी, अब ठीक उन्हीं स्थानों में उससे उत्पन्न बिहारी भाषा बोली जाती है। बिहारी भाषा में मैथिली, मगही और भोजपुरी ये तीन बोलियाँ हैं। मिथिला या तिरहुत और उसके आस पास के कुछ स्थानों में मैथिली बोली जाती है, पर उसका विशुद्ध रूप दरभंगे में पाया जाता है। इस भाषा के प्राचीन कवियों में विद्यापति ठाकुर एक बहुत ही प्रसिद्ध और श्रेष्ठ कवि हो गए हैं, जिनकी कविता का अब तक बहुत आदर होता है। इस कविता का अधिकांश सभी बातों में प्रायः हिंदी ही है। दक्षिण बिहार और हजारीबाग की भाषा मगही कहलाती है। प्राचीन काल में यही प्रदेश मगध कहलाता था। इस भाषा में कोई साहित्य नहीं है। भोजपुरी बोली शाहाबाद और उसके चारों ओर दूर दूर तक पश्चिमी बिहार, पूर्वी संयुक्त प्रांत, पालामऊ, राँची, आजमगढ़ आदि स्थानों में थोड़े बहुत परिवर्तित रूपों में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बोली जाती है। इस बोली के तीन उपविभाग किए जा सकते हैं—शुद्ध भोजपुरी, पश्चिमी भोजपुरी और नागपुरिया। संयुक्त प्रांतवालों ने पश्चिमी भोजपुरी का नाम "पूर्वी" रख छोड़ा है, जो बहुत ही उपयुक्त और सुंदर है। पर कभी कभी इस "पूर्वी" से ऐसी भाषाओं का भी बोध होता है, जिनका भोजपुरी से कोई संबंध ही नहीं।

मैथिली और मगही में परस्पर कुछ विशेष संबंध है; और भोजपुरी इन दोनों से अलग है। मैथिली बोली में "अ" का उच्चारण प्रायः "ओ" का सा और बंगालियों के "अ" के उच्चारण से बहुत कुछ मिलता हुआ होता है। मगही के उच्चारण में यह बात उतनी अधिक नहीं है; और भोजपुरी में तो बिलकुल ही नहीं है। मैथिली और मगही में मध्यम पुरुष के लिये आदरसूचक शब्द "अपने" है; पर भोजपुरी में उसके लिये "रौरे" शब्द का व्यवहार होता है। मैथिली और मगही में क्रियाओं के रूप बनाने के जो नियम हैं, वे बहुत ही जटिल हैं; पर भोजपुरी के ये नियम अपेक्षाकृत सरल हैं। इन तीनों बोलियों के विकास और उन्नति के संबंध में यह ध्यान रखना चाहिए कि मैथिली और मगही बोली बोलनेवाले लोग पुरानी लकीर के फकीर हैं और वे सहसा कोई नई बात ग्रहण नहीं करते। पर भोजपुरी के बोलनेवाले उद्यमी और क्रियाशील होते हैं और अपने आपको परिस्थिति के अनुकूल बना लेना जानते हैं। अतः इन भाषाओं में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

परस्पर जो कुछ अंतर है, वह भी इसी अंतर के अनुसार है। मैथिली भाषा मिथिला अक्षरों में लिखी जाती है, जो बँगला अक्षरों से बहुत कुछ मिलते जुलते होते हैं। शेष बिहार में बिहारी अथवा कैथी लिपि का प्रयोग होता है जो बहुत कुछ देवनागरी के ही समान होती है; और शीर्ष रेखा के अभाव के कारण वह गुजराती अक्षरों से भी बहुत कुछ मिल जाती है।

अब हम अंतरंग और बहिरंग भाषाओं की मध्यवर्ती भाषा पूर्वी हिंदी को लेते हैं। यह भाषा अर्द्ध मागधी से निकली है और अवध, बघेलखंड, बुंदेलखंड, छोटा नागपुर और मध्य प्रदेश के कुछ प्रांतों में बोली जाती है। इसमें अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी ये तीन बोलियाँ सम्मिलित हैं। बघेली और अवधी में परस्पर बहुत थोड़ा अंतर है; पर मराठी और उड़िया का प्रभाव पड़ने के कारण छत्तीसगढ़ी इन दोनों से बहुत भिन्न जान पड़ती है। पर फिर भी अवधी के साथ उसका घनिष्ट संबंध देखने में आता है। अवधी-बघेली बोली संयुक्त प्रांत के पूर्व, बुंदेलखंड, बघेलखंड, और जबलपुर तथा मंडला आदि जिलों में बोली जाती है। फतहपुर और बाँदे के बीच में जमुना नदी जहाँ बहती है, उसके उत्तर में और इलाहाबाद जिले की दक्षिणी सीमा तक अवधी बोली का प्रचार है और उसके दक्षिण के प्रांतों में बघेली का। छत्तीसगढ़ और उसके आस पास उदयपुर,

पूर्वी हिंदी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कोरिया और सरगुजा आदि रियासतों में छत्तीसगढ़ी बोली जाती है। तात्पर्य यह कि उत्तर में नेपाल की तराई से लेकर दक्षिण में बस्तर रियासत तक पूर्वी हिंदी का प्रचार है। पर उत्तर-दक्षिण इसका जितना अधिक विस्तार है, उतना अधिक पूर्व-पश्चिम नहीं है।

पूर्वी हिंदी इसलिये अंतरंग और बहिरंग भाषाओं की मध्यवर्ती भाषा कही जाती है कि इसमें कुछ कुछ बातें दोनों प्रकार की भाषाओं की पाई जाती हैं। इसमें संज्ञाओं और सर्वनामों के रूप प्रायः उसी प्रकार बनते हैं, जिस प्रकार बहिरंग वर्ग की पूर्वी भाषाओं में बनते हैं। क्रियाओं के रूप बनाने में कुछ तो अंतरंग भाषाओं में की पश्चिमी हिंदी का और कुछ बहिरंग भाषाओं में की बिहारी भाषा का ढंग लिया जाता है। पश्चिमी हिंदी में कहते हैं—"उसने मारा"। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, अंतरंग भाषाओं में भूतकालिक क्रिया का रूप सभी पुरुषों में एक सा होता है; पर बहिरंग भाषाओं में उसके रूप में उसका पुरुष भी अंतर्हित होता है। इसी नियम के अनुसार बिहारी में—"उसने मारा" के लिये—"मरलस" कहेंगे। इसमें अंत का "स" केवल उसके पुरुष का द्योतक है, जिससे उसका अर्थ होता है—"उसने मारा"। पूर्वी हिंदी में बहिरंग भाषाओं की दूसरी विशेषता यह है कि उनकी क्रियाओं के अंत में ल या ला होता है, जो इस बिहारी "मरलस" में स्पष्ट है। पर पूर्वी हिंदी में यह विशेषता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है कि उसमें यह ल तो नहीं होता, पर पुरुष का बोधक स होता है। पूर्वी हिंदी में कहते हैं—"मारिस"। इसी प्रकार पश्चिमी हिंदी में कहेंगे—"उसने दिया"। बिहारी में कहा जायगा—"देहलस"; और पूर्वी हिंदी में उसका रूप होगा—"दिहिस"। इन सब में "स" "वह" का बोधक है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार किसी समय अर्द्ध मागधी मध्यवर्ती भाषा थी, उसी प्रकार उसकी स्थानापन्न यह पूर्वी हिंदी भी मध्यवर्ती भाषा है। अस्तु।

ऊपर हम इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि किस प्रकार वैदिक प्राकृत से भिन्न भिन्न प्राकृतों का विकास हुआ और कैसे इनके साहित्यिक रूप धारण करने पर अपभ्रंशों का उदय हुआ; तथा जब ये अपभ्रंश भाषाएँ भी साहित्यिक रूप धारण करने लगीं, तब कैसे आधुनिक देश-भाषाओं की उत्पत्ति हुई। हिंदी के संबंध में विचार करने के समय यह स्मरण रखना चाहिए कि उसका उदय क्रमशः शौरसेनी और अर्धमागधी प्राकृतों तथा शौरसेनी और अर्धमागधी अपभ्रंशों से हुआ है। अतएव जब हम हिंदी के शब्दों की उत्पत्ति तथा उसके व्याकरण के किसी अंश पर विचार करते हैं, तब हमें यह जान लेना आवश्यक होता है कि प्राकृतों या अपभ्रंशों में उन शब्दों के क्या रूप या व्याकरण के उस अंग की क्या व्यवस्था होती है। हमारे यहाँ अत्यंत प्राचीन काल में शब्दों की उत्पत्ति के विषय में बहुत कुछ विवेचन हुआ

धातु-भेद

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है। यास्क ने अपने निरुक्त में इस बात पर बहुत विस्तार के साथ विचार किया है कि शब्दों की उत्पत्ति धातुओं से हुई है। यास्क का कहना था कि सब शब्द धातु-मूलक हैं; और धातु क्रियापद हैं, जिनमें प्रत्यय आदि लगकर शब्द बनते हैं। इस सिद्धांत के विरुद्ध यह कहा गया कि सब शब्द धातु-मूलक नहीं हैं; क्योंकि यदि सब शब्दों की उत्पत्ति धातुओं से मान ली जाय, तो "अश्" धातु से, जिसका अर्थ 'चलना' है, अश्व शब्द बनकर सब चलनेवाले जीवों के लिये प्रयुक्त होना चाहिए; पर ऐसा होता नहीं है। इसका उत्तर यास्क ने यह दिया है कि जब एक क्रिया के कारण एक पदार्थ का नाम पड़ जाता है, तब वही क्रिया करनेवाले दूसरे पदार्थों का वही नाम नहीं पड़ता। फिर किसी पदार्थ का कोई मुख्य गुण लेकर ही उस पदार्थ का नाम रखा जाता है, उसके सब गुणों का विचार नहीं किया जाता। इसी मत का अनुकरण पाणिनि ने भी किया है और इस समय सब भाषाओं के संबंध में यही मत माना भी जाता है संस्कृत में १७०८ धातु हैं जिनके तीन मुख्य विभाग हैं।

(क) प्रथम प्रकार के धातु (१) या तो एक स्वर के बने होते हैं, जैसे 'ई' (२) या एक स्वर और एक व्यंजन से, जैसे "अद्" (३) अथवा एक व्यंजन और एक स्वर से, जैसे "दा"। किसी भाषा के इतिहास में इस प्रकार के धातु, जिन्हें हम मूल धातु कह सकते हैं, सब से प्रधान होते हैं; पर विकासमान विचारों और भावों को व्यंजित

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करने में इनकी शक्ति साधारणतः बहुत अस्पष्ट होती है। इसलिये क्रमशः इनका स्थान दूसरे प्रकार के धातु और दूसरे प्रकार के धातुओं का स्थान तीसरे प्रकार के धातु ग्रहण कर लेते हैं।

(ख) दूसरे प्रकार के धातु एक व्यंजन, एक स्वर और एक व्यंजन से बने होते हैं; जैसे 'तुद्'। आर्य भाषाओं में इस श्रेणी के धातुओं का अंतिम व्यंजन प्रायः बदल-कर अनेक अन्य धातुओं की सृष्टि करता है, जैसे तुप्, तुभ्, तुफ्, तुग्, तुर्, तुद्, तुस्। इन सब धातुओं के अर्थ में मूल भाव एक ही है, पर विचारों और भावों के सूक्ष्म भेदों को प्रदर्शित करने के लिये इन धातुओं के अंतिम व्यंजन का परिवर्तन करके शब्दों की शक्ति की वृद्धि का आयोजन किया गया है।

(ग) तीसरी श्रेणी के धातुओं के चार उपभेद होते हैं; जो इस प्रकार बनते हैं—

(१) व्यंजन, व्यंजन और स्वर, जैसे "क्रू"।

(२) स्वर, व्यंजन और व्यंजन, जैसे "अर्द्"।

(३) व्यंजन, व्यंजन, स्वर और व्यंजन, जैसे "स्पस्",

(४) व्यंजन, व्यंजन, स्वर, व्यंजन और व्यंजन जैसे "स्पन्द्"।

इस श्रेणी के धातुओं में यह विशेषता होती है कि दो व्यंजनों में से एक अंतस्थ, अनुनासिक या ऊष्म होता है और इसमें विपर्यय होकर अनेक धातु बन जाते हैं जो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भावों या विचारों के सूक्ष्म भेदों का व्यंजन करने में सहायता देते हैं।

इस प्रकार धातुओं से संस्कृत के शब्द-भांडार की श्री-वृद्धि हुई है। प्रोफेसर मैक्समूलर का अनुमान है कि यदि विचार और परिश्रम किया जाय, तो संस्कृत का समस्त शब्द-भांडार १७०६ धातुओं से घटकर लगभग ५०० धातुओं पर अवलंबित हो जाय।

इन धातुओं से संस्कृत का समस्त शब्द-भांडार बनता है। संस्कृत शब्दों में से अनेक शब्द हमारी हिंदी में मिल गए हैं। ऐसे शब्दों को जो सीधे संस्कृत से हमारी भाषा में आए हैं, तत्सम शब्द कहते हैं। हमारी भाषा में ऐसे शब्दों का समावेश दिनों दिन बढ़ता जाता है। भाषा की व्यंजक शक्ति की उन्नति के लिये यह एक प्रकार से आवश्यक और अनिवार्य भी है। ये तत्सम शब्द अधिकतर संस्कृत के प्रातिपादिक रूप में लिए जाते हैं; जैसे, देव, फल; और कुछ संस्कृत की प्रथमा के एकवचन के रूप में हिंदी में सम्मिलित होकर प्रयुक्त होते हैं और उसके व्याकरण के अनुशासन में आते हैं; जैसे—राजा, पिता, दाता, नदी आदि।

शब्द भेद

इनके अतिरिक्त हिंदी में ऐसे शब्दों की बड़ी भारी संख्या है जो सीधे प्राकृत से आए हैं अथवा जो प्राकृत से होते हुए संस्कृत से निकले हैं। इनको तद्भव कहते हैं। जैसे—मान, काज, बच्चा इत्यादि। इस प्रकार के शब्दों में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यह विचार करना आवश्यक नहीं है कि वे संस्कृत से प्राकृत में आए हुए तद्भव शब्द थे अथवा प्राकृतों के ही तत्सम शब्द थे। हमारे लिये तो इतना ही जान लेना आवश्यक है कि ये शब्द प्राकृत से हिंदी में आए हैं।

तीसरे प्रकार के वे शब्द हैं जिन्हें अर्ध-तत्सम कहते हैं। इनके अंतर्गत वे सब संस्कृत शब्द आते हैं जिनका रूपात्मक विकास प्राकृत-भाषियों द्वारा होते होते भिन्न रूप हो गया है; जैसे—अगिन, वच्छ, अच्छर, किरपा।

इन तीनों प्रकार के शब्दों की भिन्नता समझने के लिये एक दो उदाहरण दे देना आवश्यक है। संस्कृत का "आज्ञा" शब्द हिंदी में ज्यों का त्यों आया है, अतएव यह तत्सम हुआ। इसका अर्ध-तत्सम रूप अग्याँ हुआ। प्राकृत में इसका रूप "आणा" होता है जिससे हिंदी का 'आन' शब्द निकला है। इसी प्रकार "राजा" शब्द तत्सम है और 'राय' या 'राव' उसका तद्भव रूप है। इन तीनों प्रकार के अर्थात् तत्सम, अर्ध-तत्सम और तद्भव शब्द हिंदी में मिलते हैं; परंतु सब शब्दों के तीनों रूप नहीं मिलते। क्रियापद और सर्वनाम प्रायः सब तद्भव हैं, परंतु संज्ञा शब्द तत्सम, अर्ध-तत्सम और तद्भव तीनों प्रकार के मिलते हैं। इन तीनों प्रकार के शब्दों के कुछ और उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

तत्सम	अर्ध-तत्सम	तद्भव
वत्स	वच्छ	बच्चा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तत्सम	अर्ध-तत्सम	तद्भव
स्वामी		साईं
कर्ण		कान
कार्य	कारज	काज
पक्ष		पंख, पाख
वायु		बयार
अक्षर	अच्छर	अक्खर, आखर
रात्रि	रात	
सर्व		सब
दैव	दई	

तत्सम और तद्भव शब्दों के रूपात्मक विभेद के कारण प्रायः उनके अर्थ में भी विभेद हो गया है। विशेषता यह देखने में आती है कि तत्सम शब्द कभी सामान्य अर्थ में प्रयुक्त होता है, पर उसी का तद्भव रूप विशेष अर्थ देता है; जैसे—गर्भिणी और गाभिन, स्थान और थान। कभी कभी तत्सम शब्द से गुरुता का भाव प्रकट किया जाता है और उसी के तद्भव रूप से लघुता का; जैसे—देखना और दर्शन। तद्भव शब्दों से क्रियापद बनते हैं, पर आधुनिक हिंदी में तत्सम शब्दों से क्रियापद नहीं बनते। उनमें 'करना' या 'होना' जोड़कर उनके क्रियापद रूप बनाए जाते हैं; जैसे "देखना" और 'दर्शन करना' या 'दर्शन होना'। पुरानी कविता में तत्सम शब्दों से क्रियापद बनाए गए हैं और उनका प्रयोग भी बहुत कुछ हुआ है। आजकल कुछ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

क्रियापद तत्सम शब्दों से बनकर प्रयोग में आने लगे हैं; जैसे "दर्शाना"। ज्यों ज्यों खड़ी बोली में कविता का प्रचार बढ़ेगा, त्यों त्यों उसमें ऐसे क्रियापदों की संख्या बढ़ेगी। भाषा की व्यंजक-शक्ति बढ़ाने और उसके संक्षेप में भाव प्रकट करने में समर्थ होने के लिये ऐसे क्रियापदों की संख्या में वृद्धि होना आवश्यक नहीं, अनिवार्य भी है। यह भी देखने में आता है कि कभी कभी एक ही अर्थक शब्द के तत्सम और तद्भव रूपों में भिन्न भिन्न अर्थ हो जाते हैं; जैसे—'वंश' शब्द के तत्सम रूप का अर्थ कुटुंब और तद्भव रूप बाँस का अर्थ वृक्ष विशेष ही लिया जाता है।

इन तीनों प्रकार के शब्दों के अतिरिक्त हिंदी में कुछ शब्द ऐसे भी मिलते हैं जिनकी व्युत्पत्ति का कोई पता नहीं चलता। संभव है कि भाषा—विज्ञान की अधिक चर्चा होने तथा शब्दों की व्युत्पत्ति की अधिक खोज होने पर इनके मूल आधार का पता चल सके। ऐसे शब्दों को 'देशज' कहते हैं; जैसे तेंदुआ, खिड़की, घूआ, ठेस। इस समय तक तो इन शब्दों का देशज माना जाना अल्पज्ञता का ही सूचक है।

एक और प्रकार के शब्द जो किसी पदार्थ की वास्तविक या कल्पित ध्वनि पर बने हैं और जिन्हें 'अनुकरण' शब्द कहते हैं, हिंदी भाषा में पाए जाते हैं; जैसे—खटखटाना चटचटाना, फड़फड़ाना, धमकाना इत्यादि। संसार की सब भाषाओं में ऐसे शब्द पाए जाते हैं और, जैसा कि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हम आरंभ में कह चुके हैं, इसी अनुकरण सिद्धांत पर मनुष्यों की भाषा का विकास ही हुआ है।

इस प्रकार हम हिंदी के शब्द-भांडार का विश्लेषण करके इस सिद्धांत पर पहुँचते हैं कि इसमें (१) संस्कृत या प्राकृत भाषाओं से आगत शब्दों और (२) देशज शब्दों तथा अनुकरण शब्दों की संख्या भरी पड़ी है। अनुकरण और देशज शब्दों की संख्या कम है, पर तत्सम और तद्भव शब्दों की संख्या बहुत अधिक है।

पर हमारी भाषा पर भारतवर्ष की अन्य भाषाओं तथा विदेशियों की भाषा का भी कम प्रभाव नहीं पड़ा है।

विदेशी प्रभाव

द्रविड़ भाषाओं के बहुत से शब्द संस्कृत और प्राकृतों में मिल गए हैं और उनमें होते हुए हमारी भाषा में आ गए हैं; जैसे—पिलइ से पिल्ला आदि। टवर्ग अक्षरों के विषय में हम पहले कह चुके हैं कि इनका आगम संस्कृत और प्राकृत में तथा उनसे हमारी भाषा में द्रविड़ भाषाओं के प्रभाव के कारण हुआ है। डाक्टर ग्रियर्सन की सम्मति है कि द्रविड़ भाषाओं के शब्द ही हमारी भाषा में नहीं मिल गए हैं, वरन् उनके व्याकरण का भी उस पर प्रभाव पड़ा है। वे कहते हैं कि हिंदी की कुछ विभक्तियाँ भी द्रविड़ भाषाओं की विभक्तियों के अनुरूप बनाई गई हैं; जैसे—कर्म और संप्रदान कारकों की विभक्ति संस्कृत के "कृते" से निकलकर "कहुँ" होती हुई 'को' हो गई है। इसी प्रकार द्रविड़ भाषाओं में इन्हीं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दोनों कारकों की विभक्ति 'कु' है। विभक्तियों के विषय में हम आगे चलकर विशेष रूप से विचार करेंगे। यहाँ इतना ही जान लेना आवश्यक है कि हिंदी विभक्ति 'को' की द्रविड़ विभक्ति 'कु' से बहुत कुछ समानता है; पर इससे यह सिद्धांत नहीं माना जा सकता कि वह द्रविड़ भाषाओं से हिंदी में आई। डाक्टर ग्रियर्सन ने भी इस सिद्धांत को नहीं माना है। उनके कहने का तात्पर्य इतना ही है कि द्रविड़ विभक्तियों की अनुरूपता हमारी विभक्ति के जिस रूप में पाई गई, वह रूप अधिक ग्राह्य समझा गया। द्रविड़ शब्दों के संबंध में मिस्टर केलाग का कहना है कि टवर्ग के अक्षरों से आरंभ होनेवाले अधिकांश शब्द प्राकृतों से हिंदी में आए हैं। उन्होंने हिसाब लगाकर बताया है कि प्रेमसागर के ८९ शब्दों में से टवर्ग के अक्षरों से आरंभ होनेवाले २१ संस्कृत के तत्सम और ६८ प्राकृत के तद्भव हैं; और 'क' से आरंभ होनेवाले १२८ शब्दों में से २१ तद्भव और १०७ तत्सम हैं। इससे वे सिद्धांत निकालते हैं कि भारतवर्ष के आदिम द्रविड़ निवासियों की भाषाओं का जो प्रभाव आधुनिक भाषाओं पर पड़ा है, वह प्राकृतों के द्वारा पड़ा है।

For Ambikai Sp... Manager / ...

अब कई आधुनिक आर्य-भाषाओं के भी शब्द हिंदी में मिलने लगे हैं; जैसे—मराठी के लागू, चालू, बाजू, और बँगला के प्राणपण, चूडांत, भद्र लोग, गल्प, नितांत, सुविधा आदि।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हिंदी के शब्द-भांडार पर मुसलमानों और अँग्रेजों की भाषाओं का कुछ कम प्रभाव नहीं पड़ा है। मुसलमानों की भाषाओं में फारसी, अरबी और तुर्की भाषाएँ मानी जाती हैं। इन तीनों भाषाओं के शब्दों का प्रयोग मुसलमानों द्वारा अधिक होने के कारण तथा मुसलमानों का उत्तरी भारत पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ने के कारण ये शब्द हमारी बोलचाल की भाषा में बहुत अधिकता से मिल गए हैं और इसी कारण साहित्य की भाषा में भी इनका प्रयोग चल पड़ा है। पर यहाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि इनमें से अधिकांश शब्दों का रूपात्मक विकास होकर हमारी भाषा में आगम हुआ है। रूपात्मक विकास के संबंध में हम पहले जो कुछ लिख चुके हैं, वह इन सब मुसलमानी शब्दों के संबंध में भी चरितार्थ होता है। यह एक साधारण सिद्धांत है कि विदेशी उच्चारण ग्राहक भाषा के निकटतम उच्चारण के अनुकूल हो जाता है। इसी सिद्धांत के अनुसार मुसलमानी शब्दों का रूपांतर हिंदी में हुआ है। इन परिवर्तनों को हम संक्षेप में नीचे देते हैं—

(१) ط और ت हिंदी में त हो जाते हैं; जैसे طلب का तलब और تکرار का तकरार।

(२) ص ث और س हिंदी में स हो जाते हैं; जैसे ثابت का साबित, سئیس का सईस, صاحب का साहिब या साहेब। ش का प्रायः श हो जाता है, यद्यपि बोल चाल की भाषा में वह भी प्रायः स ही रहता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

(३) ذ ز ض ظ सब हिंदी में ज हो जाते हैं; जैसे ذرہ का जरा, زمین का जमीन, ضامن का जामिन, ظاہر का जाहिर। कहीं अंतिम ذ द में भी परिवर्तित होता है; जैसे کاغذ का कागद।

(४) ح और ہ हिंदी में ह हो जाते हैं; जैसे حال का हाल, ہر का हर। शब्दों के अंत में आया हुआ ہ, जो प्रायः विसर्ग के समान प्रयुक्त होता है, हिंदी में आ में परिवर्तित हो जाता है; जैसे شبہ का शुभा پردہ का पर्दा या परदा, مُردہ का मुर्दा या मुरदा, پیادہ का प्यादा।

(५) خ और غ हिंदी में क्रमशः क, ख, और ग हो जाते हैं; जैसे قول का कौल, حق का हक, خاک का खाक, غم का गम, غلام का गुलाम, غریب का गरीब।

(६) ف हिंदी में फ हो जाता है, जैसे فائدہ का फायदा, فکر का फिकर, شریف का शरीफ। इस अक्षर के विदेशी उच्चारण का प्रभाव कुछ अधिक व्यापक जान पड़ता है। यद्यपि यह प्रायः फ हो जाता है, पर बोल चाल में इसने अपना प्रभाव कुछ कुछ बना रखा है; और कहीं कहीं तो शुद्ध संस्कृत उच्चारण का भी लोग धोखे से ف के समान उच्चारण कर देते हैं; जैसे फूल को फूल न कहकर फूल और फिर को फिर न कहकर फ़िर कह बैठते हैं।

(७) ع और ء का कभी कभी लोप हो जाता है। ع जब शब्द के बीच में आता है, तो उसका लोप होकर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उसके पूर्व का अर्वोच्चरित अ दीर्घ हो जाता है; जैसे معلوم का मालूम, موافق का माफिक।

ये सब उदाहरण भाषा के रूपात्मक विकास के भिन्न भिन्न भेदों के अंतर्गत आते हैं। आगम, विपर्यय और लोप संबंधी भेद भी मुसलमानी भाषाओं से आए हुए शब्दों में प्रत्यक्ष देख पड़ते हैं; जैसे मर्द से मरद, फिक्र से फिकर, अमानत से अनामत।

युरोपियन भाषाओं के शब्द भी, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, हमारी भाषा में मिल गए हैं और वर्तमान समय में तो बहुत अधिकता से मिलते जाते हैं। इन शब्दों में से थोड़े से शब्द तो पुर्तगाली भाषा के हैं; जैसे Camera से कमरा, Martello से मार-तौल, Leiloo से नीलाम; परंतु अँग्रेजी भाषा के शब्दों की संख्या हमारी भाषा में बहुत अधिक हो गई है और नित्य बढ़ती जा रही है। इनमें से कुछ शब्द तो तत्सम रूप में आए हैं, पर अधिकांश शब्द तद्भव रूप में आए हैं। तत्सम रूप में आए हुए शब्दों के कुछ उदाहरण ये हैं—इंच, फुट, अमोनिया, बेंच, बिल, बोर्ड, वोट, बूट, वार्डर, बजेट, बंडल, बटन इत्यादि। तद्भव शब्दों के संबंध में आगम, विपर्यय, लोप और विकार के नियमों का स्पष्ट प्रभाव देख पड़ता है; जैसे (१) Sample से सैंपुल, Recruit से रंगरूट Dozen से दर्जन (२) General से जरनल, Desk से डेकस (३) Report से रपट, Pantloon से

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पतलून, Magistrate से मजिस्टर, Lanternसे लालटैन, Hundredwieght से हंडर या हंडरवेट (४) Town Duty से टूनरूटी, Time से टेम, Ticket से टिकट, Quinine से कुनैन, Kettle से केतली। इन उदाहरणों को देखकर यह स्पष्ट होता है कि शब्दों के रूपात्मक विकास में आगम, विपर्यय, लोप और विकार के नियमों में से कोई एक नियम किसी एक शब्द के रूप के परिवर्तित होने में नहीं लगता, वरन् दो या अधिक नियम एक साथ लगते हैं। यदि हम प्रत्येक शब्द के संबंध में सूक्ष्म विश्लेषण न करके एक व्यापक नियम के आधार पर शब्दों के संबंध में विचार करें, तो सब काम चल जाता है। वह नियम यह है कि जब एक भाषा से दूसरी भाषा में कोई शब्द आता है, तब वह शब्द उस ग्राहक भाषा के अनुरूप उच्चारण के शब्द या निकटतम मित्राक्षर शब्द से, जो उस भाषा में पहले से वर्तमान रहता है, प्रभावान्वित होकर कुछ अक्षरों का लोप करके अथवा कुछ नए अक्षरों को जोड़कर उसके अनुकूल बना लिया जाता है।

ऊपर जो कुछ कहा गया है, उससे यह मुख्य सिद्धांत निकलता है कि हिंदी भाषा में प्राचीन आर्य भाषाओं के अथवा विदेशी भाषाओं के जो शब्द आए हैं, वे या तो तत्सम रूप में आए हैं अथवा तद्भव रूप में। अधिकांश शब्द तद्भव रूप में ही आए हैं। तत्सम शब्दों की संख्या बहुत कम है। पर साथ ही यह प्रवृत्ति भी देख पड़ती है

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कि जो लोग प्राचीन आर्य भाषाओं के अथवा विदेशी भाषाओं के ज्ञाता हैं, वे उन भाषाओं के शब्दों को तत्सम रूप में ही व्यवहृत करने का उद्योग करते हैं। यह प्रवृत्ति यहाँ तक बढ़ रही है कि रूपात्मक विकास के सिद्धांतों की भी परवा न करके लोग उन शब्दों को शुद्ध विदेशी या प्राचीन रूप में ही अपनी भाषा में रक्षित रखना चाहते हैं। इससे एक ओर तो नए उच्चारणों के लिये, जो हमारी भाषा में वर्तमान नहीं हैं, नए चिह्नों के बनाने की आवश्यकता उपस्थित हो गई है और दूसरी ओर हमारी भाषा की पाचन-शक्ति में व्याघात पहुँच रहा है। जिस प्रकार कोई जीवधारी पाचन शक्ति के मंद पड़ जाने अथवा उसके क्रमशः नष्ट हो जाने के कारण अपनी शारीरिक क्रियाएँ संपन्न करने में असमर्थ हो जाता है, उसी प्रकार जब किसी भाषा की पाचक शक्ति का नाश हो जाता है, अर्थात् जब उसमें दूसरी भाषाओं के शब्दों को लेकर तथा उन्हें अपने नैसर्गिक रूप में परिवर्तित करके अपना अंग बनाने की शक्ति नहीं रह जाती, तब वह क्रमशः क्षीण होकर या तो नष्टप्राय हो जाती है अथवा ऐसा विकृत रूप धारण करने लगती है कि उसके पूर्व ऐतिहासिक रूप का पता लगना भी कठिन हो जाता है। संस्कृत, फारसी और अँग्रेजी के विद्वानों को यह ध्यान रखना चाहिए कि अपने पांडित्य की कौंध के आगे वे कहीं अपनी मातृभाषा को विवर्ण करके छिन्न भिन्न न कर दें।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हम यहाँ पर इतना और कह देना चाहते हैं कि जहाँ नई जातियों के संसर्ग तथा नए भावों का उदय होने से हमारी भाषा में नए शब्दों का आगम रोकना असंभव है, वहाँ अपने पूर्व रूप को न पहचानने के कारण अपने प्राचीन शब्द--भांडार से सहायता न लेना भी अस्वाभाविक है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि अपना नैसर्गिक रूप न भूला जाय और भाषा को दासत्व की बेड़ी न पहनाई जाय।

प्राचीन भारतीय भाषाओं का प्रभाव

हम पहले लिख चुके हैं कि हिंदी में प्राचीन आर्य भाषाओं के शब्द भी तत्सम, अर्ध-तत्सम या तद्भव रूप में आए हैं। जैसा कि हम पहले निर्देश कर चुके हैं, अनेक अवस्थाओं में एक ही शब्द के तत्सम और तद्भव दोनों रूप प्रयोग में आते हैं। पर ऐसे दोनों रूपों के अर्थों में कुछ सूक्ष्म विभेद हो गया है; जैसे; मेघ--मेह, स्थान--थान या थाना, दर्शन--देखना। इनमें से कहीं तो प्रायः ऐसा देखा जाता है कि तद्भव शब्द के अर्थ में कुछ विशिष्टता आ जाती है और कहीं तत्सम शब्द आदर अथवा महत्ता का सूचक हो जाता है। तत्सम संज्ञावाचक और विशेषणवाचक शब्द संस्कृत से अधिकतर प्रातिपदिक रूप में और कुछ संस्कृत के प्रथमा एकवचन के रूप में आकर हिंदी व्याकरण के शासनाधीन होते हैं। फल, घृत, पशु, सुंदर, कुरूप आदि शब्द प्रातिपदिक रूप में ही लिए

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हुए हैं। दाता, सरिता, राजा, धनवान्, तेजस्वी आदि प्रथमा एकवचन के रूप में आते हैं। इसका तात्पर्य यही है कि हिंदी के कारक चिह्न स्वतंत्र हो गए हैं और संस्कृत के कारक चिह्नों का प्रयोग हिंदी में लुप्त हो गया है।

विशेषणों के तारतम्य सूचक चिह्न भी हिंदी में प्रायः लुप्त हो गए हैं, और इनके स्थान पर शब्दों से काम लिया जाता है। कहीं कहीं इन चिह्नों का प्रयोग भी होता है, पर वह सब तत्सम शब्दों के साथ। जैसे श्रेष्ठतर, पुण्यतर, मंदतम।

हिंदी के संख्यावाचक विशेषणों तथा सर्वनामों में बहुत विकार हो गया है। अब वे सर्वथा तद्भव हो गए हैं। क्रियाओं में तत्सम क्रियाओं के रूप कविता में तो मिलते हैं, पर गद्य में नहीं मिलते। इधर किसी किसी का प्रयोग गद्य में होने लगा है; जैसे, दर्शाना। पर अधिकांश क्रियाएँ तद्भव ही हैं, और जहाँ कहीं तत्सम शब्दों का प्रयोग किया जाता है, वहाँ तत्सम संज्ञावाचक शब्द के साथ में करना, होना, लेना आदि तद्भव क्रियाएँ लगा दी जाती हैं।

हिंदी में तद्भव शब्दों की संख्या बहुत अधिक है। ये संस्कृत से प्राकृत या अपभ्रंश द्वारा विकृत होकर हिंदी में आए हैं। इनके विकृत होने में आगम, लोप, विपर्यय तथा विकार के नियम लगते हैं। ये विकार शब्द के आदि, मध्य या अंत में होते हैं। सबसे अधिक परिवर्त्तन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शब्दों के मध्य में होता है; इसके अनंतर आरंभ के परिवर्त्तनों की संख्या है; और अंत में तो बहुत कम परिर्त्तन होते हैं। इस विषय पर एक स्वतंत्र पुस्तक ही लिखी जा सकती है, अतः हम यहाँ केवल यही बतला देते हैं कि प्रयत्न-लाघव, स्वरसाम्य और गुणसाम्य आदि अनेक प्रकार के परिवर्त्तन करते हैं।

हिंदी का नादात्मक विश्लेषण

हिंदी में मूल स्वर चार हैं—अ, इ, उ, ऋ। इनके दीर्घ आ, ई, ऊ होते हैं। ऋ के दीर्घ रूप ॠ का हिंदी में प्रयोग नहीं होता और ह्रस्व ऋ भी केवल तत्सम शब्दों में ही प्रयुक्त होता है। पुरानी हिंदी कविता में ह्रस्व ऋ का भी प्रयोग नहीं मिलता। जहाँ इसकी आवश्यकता होती थी, वहाँ 'रि' लिखा जाता था। पर इधर तत्सम शब्दों के अधिक प्रयोग से उनमें सदा ऋ प्रयुक्त होता है। संयुक्त स्वर चार हैं जो इस प्रकार बनते हैं—

अ या आ + इ या ई = ए।
अ या आ + उ या ऊ = ओ।

इस प्रकार के संयुक्त स्वरों के विकार को गुण कहते हैं। पर जब इन गुण रूपों का साधारण रूपों से संयोग होता है, तब उन्हें वृद्धि कहते हैं। जैसे,—

अ या आ + ए या ऐ = ऐ।
अ या आ + ओ या औ = औ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अतएव यह स्पष्ट हुआ कि हिंदी में चार मूल स्वर, तीन दीर्घ स्वर और चार संयुक्त स्वर हैं। इनका कहीं पूर्ण उच्चारण होता है और कहीं अपूर्ण। अपूर्ण उच्चारण कहाँ कहाँ होता है, यह नीचे दिया जाता है—

(१) हिंदी में अंत्य अ का उच्चारण प्रायः अपूर्ण हल् के समान होता है; जैसे गुण, रात, घन। परंतु यदि अकारांत शब्द का अंत्याक्षर संयुक्त हो तो अंत्य अ का पूर्ण उच्चारण होता है; जैसे सत्य, इंदु, गुरुत्व, धर्म, अशक्त। इसी प्रकार यदि इ, ई या ऊ के आगे अंतिम अक्षर य हो तो उसके अ का पूर्ण उच्चारण होता है; जैसे प्रिय, सीय, राजसूय। एकाक्षरी अकारांत शब्दों के अंत्य अ का भी पूर्ण उच्चारण होता है; जैसे न, ब।

(२) कविता में अंत्य अ का उच्चारण कुछ अधिक स्पष्ट होता है; परंतु यदि इस अक्षर पर यति होती है, तो उच्चारण बहुधा अपूर्ण ही रहता है। इसी प्रकार दीर्घ स्वरांत त्र्यक्षरी शब्दों में यदि दूसरा अक्षर अकारांत हो, अथवा चार अक्षरों के ह्रस्व-स्वरांत शब्दों में यदि दूसरा अक्षर अकारांत हो, अथवा चार अक्षरों के दीर्घ-स्वरांत शब्दों में यदि तीसरा अक्षर अकारांत हो, तो इन सब अवस्थाओं में अ का उच्चारण अपूर्ण होता है; जैसे बकरा, कपड़ा, करना, गड़बड़, मानसिक, सुरलोक, समझना, सुनहला, कचहरी। परंतु चार अक्षरों के ह्रस्व-स्वरांत शब्दों में यदि दूसरा अक्षर संयुक्त हो अथवा पहला अक्षर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कोई उपसर्ग हो, तो दूसरे अक्षर के अ का उच्चारण पूर्ण होता है; जैसे पुत्रलाभ, धर्महीन, आचरण, प्रचलित।

(३) यौगिक शब्दों के मूल अवयव के अंत्य अ का उच्चारण अपूर्ण होता है; जैसे सुरलोक, अन्नदाता, सुखदायक।

(४) हिंदी के तत्सम शब्दों में ऐ और औ का उच्चारण तो संस्कृत के समान ही होता है, पर तद्भव शब्दों में यह अय और अव का सा होता है। पूर्वी हिंदी में 'ऐ' का उच्चारण 'अइ' और 'औ' का उच्चारण 'अउ' के सदृश होता है।

(५) कहीं ए, ऐ, ओ और औ का आधा उच्चारण होता है और कहीं पूरा। अपूर्ण उच्चारण में प्रयत्नलाघव का सिद्धांत काम करता है। प्रायः यह देखने में आता है कि किसी शब्द के अंत से तीसरे स्थान पर यह आधा उच्चारण होता है। पर इस संबंध में यह ध्यान रखना चाहिए कि इन संयुक्त वर्णों की दो मात्राएँ होने से इनकी गिनती दो अक्षरों के समान होनी चाहिए। डाक्टर ग्रियर्सन ने इस संबंध में ये नियम बनाए हैं—

(क) जब कभी आ किसी शब्द के अंत से तीसरे स्थान पर होता है, तब उसका अपूर्ण उच्चारण होता है; जैसे नाउआ, आगिया और पानिया में के ना, आ और पा का आ। इसके अपूर्ण उच्चारण होने के कारण यह आ प्रायः अ ही लिखा जाता है; जैसे नउआ, अगिया, पनिएँ। यह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

[पर वास्तव में यह नियम सर्वत्र नहीं लगता, केवल वहीं लगता है जहाँ पूरबी हिंदी में स्वार्थे 'वा' 'या' लगते हैं; जैसे देसवा, पनिया इत्यादि। 'जालिया' 'सितारिया' आदि शब्दों में 'जा,' 'ता' के ह्रस्व करने की कोई प्रवृत्ति नहीं रहती।]

(ख) कोई दूसरा दीर्घ या संयुक्त स्वर जब शब्द के अंत से तीसरे स्थान पर होता है, तब उसका अपूर्ण उच्चारण होता है, यदि उसके अनंतर कोई व्यंजन जो सस्वर य और व न हो, होता है; जैसे नेनुवा में का 'ने'।

(ग) कोई स्वर या संयुक्त स्वर जब तीसरे स्थान से पहले होता है, अर्थात् चौथे या पाँचवें आदि स्थान पर रहता है, तब उसका अपूर्ण उच्चारण होता है, चाहे उसके पीछे व्यंजन आवे या नहीं; जैसे देखैतिऔ।

(घ) शब्द के अंत के अपूर्ण अ, इ और उ की गिनती ऐसे उच्चारण के स्थिर करने में नहीं की जाती।

हिंदी में स्वराघात

हिंदी में शब्दों के उच्चारण में कहीं कहीं स्वरों पर जोर दिया जाता है। इसके लिये भी कुछ नियम निर्धारित किए गए हैं, जो इस प्रकार हैं—

(१) यदि शब्द के अंत में अपूर्णोच्चरित अ आवे, तो उसके पूर्ववर्त्ती अक्षर पर जोर पड़ता है; जैसे घर, झाड़, सड़क।

(२) यदि शब्द के मध्य भाग में अपूर्णोच्चरित अ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आवे तो उसके पूर्ववर्त्ती अक्षर पर जोर पड़ता है; जैसे अनबन, बोलकर।

(३) संयुक्त व्यंजनों में पूर्ववर्त्ती अक्षर पर जोर पड़ता है; जैसे हल्ला, आज्ञा, चित्र।

(४) विसर्ग-युक्त अक्षरों के उच्चारण पर भी जोर पड़ता है; जैसे दुःख; अंतःकरण।

(५) यौगिक शब्दों में मूल अवयवों के अक्षरों का जोर जैसे का तैसा बना रहता है; जैसे, गुणवान्, जल-मय, प्रेमसागर।

(६) शब्दों के आरंभ का अ सदा पूर्ण उच्चरित होता है।

(७) इ, उ वा ऋ के पूर्ववर्त्ती स्वर का उच्चारण कुछ लंबा होता है; जैसे हरि, साधु, समुदाय, पितृ।

(८) यदि शब्द के एक ही रूप से भिन्न अर्थ निकलते हों, तो उनका अंतर स्वराघात से सूचित किया जाता है। जैसे, उसने "ढिठाई की" और "उसकी घड़ी"। यहाँ "की" के क्रियात्मक रूप पर जोर दिया जाता है, विभक्ति "की" पर नहीं। इसी प्रकार 'बढ़ा' शब्द विधिकाल और सामान्य भूत काल दोनों में आता है। इनका भेद करने के लिये विधिकाल के सूचक 'बढ़ा' पर जोर दिया जाता है, सामान्य भूत काल के रूप पर नहीं।

हिंदी का विकास क्रमशः प्राकृत और अपभ्रंश के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अनंतर हुआ है। यद्यपि अपभ्रंश की कविता बहुत पीछे की बनी हुई भी मिलती है, परंतु हिंदी का विकास चंद बरदाई के समय से स्पष्ट देख पड़ने लगता है। इसका समय बारहवीं शताब्दी का अंतिम अर्ध भाग है, परंतु उस समय भी इसकी भाषा अपभ्रंश से बहुत भिन्न हो गई थी। अपभ्रंश का यह उदाहरण लीजिए—

हिंदी के विकास की अवस्थाएँ

भल्ला हुआ जु मारिया बहिणि म्हारा कंतु।
लज्जे जंतु वयंसिअह जइ भग्गा घरु एंतु ॥१॥
पुत्तें जाएँ कवण गुणु अवगुणु कवणु मुएण।
जा बप्पी की भुँहडी चम्पिज्जइ अवरेण ॥२॥

दोनों दोहे हेमचंद्र के हैं जिनका जन्म संवत् ११४५ में और मृत्यु सं० १२२९ में हुई थी। अतएव यह माना जा सकता है कि ये दोहे सं० १२०० के लगभग अथवा उसके कुछ पूर्व लिखे गए होंगे। अब हिंदी के आदि कवि चंद के कुछ छंद लेकर मिलाइए और देखिए, दोनों में कहाँ तक समता है।

उच्चिष्ट छंद चंदह बयन सुनत सुजंपिय नारि।
तनु पवित्त पावन कविय उकति अनूठ उधारि ॥
ताली खुल्लिय ब्रह्म दिक्खि इक असुर अदब्भुत।
दिग्घ देह चख सीस मुष्ष करुना जस जप्पत ॥

हेमचंद्र और चंद की कविताओं को मिलाने से यह स्पष्ट विदित होता है कि हेमचंद्र की कविता कुछ पुरानी है और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चंद की उसकी अपेक्षा कुछ हाल की। हेमचंद्र ने अपने व्याकरण में अपभ्रंश के कुछ उदाहरण दिए हैं जिनमें से ऊपर के दोनों दोहे लिए गए हैं; पर ये सब उदाहरण स्वयं हेमचंद्र के बनाए हुए नहीं हैं। संभव है कि इनमें से कुछ स्वयं उसी के बनाए हुए हों, पर अधिकांश अवतरण मात्र हैं और इसलिये उसके पहले के होंगे। इस अवस्था में यह माना जा सकता है कि हेमचंद्र के समय से पूर्व हिंदी का विकास होने लग गया था और चंद के समय तक उसका कुछ कुछ रूप स्थिर हो गया था; अतएव हिंदी का आदि काल हम सं० ११०० के लगभग मान सकते हैं। यद्यपि इस समय के पूर्व के कई हिंदी कवियों के नाम बताए जाते हैं, परंतु उनमें से किसी की रचना का कोई उदाहरण कहीं देखने में नहीं आता। इस अवस्था में उन्हें हिंदी के आदि काल के कवि मानने में संकोच होता है। अस्तु। चंद को हिंदी का आदि कवि मानने में किसी को संदेह नहीं हो सकता। कुछ लोगों का यह कहना है कि चंद का पृथ्वीराज रासो बहुत पीछे का बना हुआ है। इसमें संदेह नहीं कि इस रासो में बहुत कुछ प्रक्षिप्त अंश हैं, पर साथ ही उसमें प्राचीनता के चिह्न भी कम नहीं हैं। दसम समय का पूरा अंश प्राचीन जान पड़ता है।

चंद का समकालीन जगनिक कवि हुआ जो बुंदेलखंड के प्रतापी राजा परमाल के दरबार में था। यद्यपि इस

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

समय उसका बनाया कोई ग्रंथ नहीं मिलता, पर यह माना जाता है कि उसके बनाए ग्रंथ के आधार पर ही आरंभ में "आल्हाखंड" की रचना हुई थी। इस ग्रंथ की कोई प्राचीन प्रति अभी तक नहीं मिली है; पर संयुक्त प्रदेश और बुंदेलखंड में इसका बहुत प्रचार है और यह बराबर गाया जाता है। लिखित प्रति न होने तथा इसका रूप सर्वथा आल्हा गानेवालों की स्मृति पर निर्भर होने के कारण इसमें बहुत कुछ प्रक्षिप्त अंश भी मिल गया है।

हिंदी के जन्म का समय भारतवर्ष में राजनीतिक उलट-फेर का था। उसके पहले ही से यहाँ मुसलमानों का आना आरंभ हो गया था और इस्लाम धर्म के प्रचार तथा उत्कर्ष-वर्धन में उत्साही और दृढ़-संकल्प मुसलमानों के आक्रमणों के कारण भारतवासियों को अपनी रक्षा की पड़ी थी। ऐसी अवस्था में साहित्य कला की वृद्धि की किसको चिंता हो सकती थी। ऐसे समय में तो वे ही कवि सम्मानित हो सकते थे जो केवल कलम चलाने में ही निपुण न हों, वरन् तलवार चलाने में भी सिद्धहस्त तथा सेना के अग्र भाग में रहकर अपनी वाणी द्वारा सैनिकों का उत्साह बढ़ाने में भी समर्थ हों। चंद और जगनिक ऐसे ही कवि थे और इसी लिये उनकी स्मृति अब तक बनी है। परंतु उनके अनंतर कोई १०० वर्ष तक हिंदी का सिंहासन सूना देख पड़ता है। अतएव हिंदी का आदि काल संवत् ११०० के लगभग आरंभ होकर १३००-तक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चलता है। इस काल में विशेष कर वीर-काव्य रचे गए थे। इस समय की भाषा का रूप राजपूताने की भाषा से मिलता जुलता है, जिसमें बीच बीच में एक ओर पुरानी गुजराती और दूसरी ओर कहीं कहीं पुरानी पंजाबी का मिश्रण देख पड़ता है। आरंभ काल की हिंदी में एक विशेषता यह भी थी कि वह प्रायः प्राकृत-प्रधान भाषा थी, अर्थात् उसमें शब्दों के प्राकृत रूपों का अधिक प्रयोग होता था। राजपूताने में इस प्राकृत-प्रधान भाषा को "डिंगल" नाम दिया गया है। चारणों में इस भाषा का बहुत प्रचार था और अभी तक बहुत कुछ है।

इसके अनंतर हिंदी के विकास का मध्य काल आरंभ होता है जो ५०० वर्षों तक चलता है। भाषा के विचार से इस काल को हम दो मुख्य भागों में विभक्त कर सकते हैं—एक सं० १३०० से १५०० तक और दूसरा १५०० से १८०० तक। प्रथम भाग में हिंदी की पुरानी बोलियाँ बदलकर क्रमशः ब्रज भाषा, अवधी और खड़ी बोली का रूप धारण करती हैं और दूसरे भाग में उनमें प्रौढ़ता आती है; तथा अंत में अवधी और ब्रजभाषा का मिश्रण सा हो जाता है। इस काल के प्रथम भाग में राजनीतिक स्थिति डाँवाँडोल थी; उसमें क्रमशः स्थिरता आई जो दूसरे भाग में दृढ़ता को पहुँचकर पुनः डाँवाँडोल हो गई।

कुछ लोगों का यह कहना है कि हिंदी की खड़ी बोली का रूप प्राचीन नहीं है। उनका मत है कि सन् १८०० ई० के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लगभग लल्लूजी लाल ने इसे पहले पहल अपने गद्य ग्रंथ प्रेमसागर में यह रूप दिया और तब से खड़ी बोली का प्रचार हुआ। लल्लूजी लाल के पहले का भी गद्य मिलता है; और कविता में तो खड़ी बोली तेरहवीं शताब्दी के मध्य भाग तक में मिलती है। कविता में खड़ी बोली का प्रयोग मुसलमानों ने ही नहीं किया है, हिंदू कवियों ने भी किया है। यह बात सच है कि खड़ी बोली का मुख्य स्थान मेरठ के आसपास होने के कारण और भारतवर्ष में मुसलमानी राजनीति का केंद्र दिल्ली होने के कारण पहले पहल मुसलमानों और हिंदुओं की पारस्परिक बातचीत अथवा उनमें भावों और विचारों का विनियम इसी भाषा के द्वारा आरंभ हुआ और उन्हीं की उत्तेजना से इस भाषा का व्यवहार बढ़ा। इसके अनंतर मुसलमान लोग देश के अन्य भागों में फैलते हुए इस भाषा को अपने साथ लेते गए और उन्होंने इसे समस्त भारतवर्ष में फैलाया। पर यह भाषा यहीं की थी और इसी में मेरठ प्रांत के निवासी अपने भाव प्रकट करते थे। मुसलमानों के इसे अपनाने के कारण यह एक प्रकार से उनकी भाषा मानी जाने लगी और हिंदू कवियों ने अपनी कविता में मुसलमानों की बातचीत प्रायः इसी भाषा में दी है। अतएव मध्य काल में हिंदी भाषा तीन रूपों में देख पड़ती है—व्रजभाषा, अवधी और खड़ी बोली। जैसे आरंभ काल की भाषा प्राकृत-प्रधान थी, वैसे ही इस काल की तथा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इसके पीछे की भाषा संस्कृत-प्रधान हो गई। अर्थात् जैसे साहित्य की भाषा की शोभा बढ़ाने के लिये आदि काल में प्राकृत शब्दों का प्रयोग होता था, वैसे मध्य काल में संस्कृत शब्दों का प्रयोग होने लगा। इससे यह तात्पर्य नहीं कि शब्दों के प्राकृत रूपों का अभाव हो गया। प्राकृत के कुछ शब्द इस काल में भी बराबर प्रयुक्त होते रहे; जैसे भुआल, सायर, गय, बसह, नाह, लोयन आदि।

उत्तर या वर्त्तमान काल में साहित्य की भाषा में व्रज-भाषा और अवधी का प्रचार घटता गया है और खड़ी बोली का प्रचार बढ़ता गया है। इसका प्रचार इतना बढ़ा है कि अब हिंदी का समस्त गद्य इसी भाषा में लिखा जाता है और पद्य की रचना भी बहुलता से इसी में हो रही है।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है, उसका विशेष संबंध साहित्य की भाषा से है। बोलचाल में तो अब तक अवधी, व्रजभाषा और खड़ी बोली अनेक स्थानिक भेदों और उपभेदों के साथ प्रचलित है; पर इस समय साधारण बोलचाल की भाषा खड़ी बोली है।

हमने ऊपर हिंदी के विकास के भिन्न भिन्न कालों में भिन्न भिन्न बोलियों के नाम दिए हैं। इनमें मुख्य राजस्थानी, अवधी, व्रजभाषा और खड़ी बोली हैं। बुंदेलखंडी व्रजभाषा के अंतर्गत आती है। अब हम इनपर अलग अलग विचार करेंगे।

हिंदी की उपभाषाएँ या बोलियाँ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

(१) राजस्थानी भाषा—यह भाषा राजस्थान में बोली जाती है। इसके पूर्व व्रजभाषा और बुँदेली, दक्षिण में बुँदेली, मराठी, भीली, खानदेशी और गुजराती, पश्चिम में सिंधी और लहँदे की बोली या पश्चिमी पंजाबी तथा उत्तर में लहँदे की बोली, पंजाबी और बाँगडू भाषाओं का राज्य है। इनमें से मराठी, सिंधी और लहँदा बहिरंग शाखा की भाषाएँ हैं और शेष सब अन्तरंग शाखा की भाषाएँ हैं।

जहाँ इस समय पंजाबी, गुजराती और राजस्थानी भाषाओं का, जो अंतरंग भाषाएँ हैं, प्रचार है, वहाँ पूर्व काल में बहिरंग भाषाओं का प्रचार था। क्रमशः अंतरंग समुदाय की भाषाएँ इन स्थानों में फैल गईं और बहिरंग समुदाय की भाषाओं को अपने स्थान से च्युत करके उन्होंने उन स्थानों में अपना अधिकार जमा लिया। आधुनिक राजस्थानी में बहिरंग भाषाओं के कुछ अवशिष्ट चिह्न मिलते हैं; जैसे आ, ए, ऐ और ओ के उच्चारण साधारण न होकर उससे कुछ भिन्न होते हैं। इसी प्रकार छ का उच्चारण स से मिलता जुलता और शुद्ध स का ह के समान होता है। इसके अतिरिक्त राजस्थानी भाषाओं की संज्ञा का विकृत कारक बहिरंग भाषाओं के समान आ होता है और संबंधकारक का चिह्न बँगला के समान र होता है।

बहिरंग भाषाओं को उनके स्थान से हटाकर अंतरंग भाषाओं के प्रचलित होने के प्रमाण कई ऐतिहासिक घटनाओं से भी मिलते हैं। महाभारत के समय में पांचाल देश का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विस्तार चंबल नदी से हरद्वार तक था। अतएव उसका दक्षिणी भाग राजपूताने का उत्तरी भाग था। यह माना जाता है कि पांचाल लोग उन आर्यों में से थे जो पहले पहल भारतवर्ष में आए थे। इसलिये उनकी प्राचीन भाषा बहिरंग समुदाय की थी। जब अंतरंग समुदाय की भाषा बोलनेवाले आर्य, जो पीछे भारतवर्ष में आए, अधिक शक्ति-संपन्न होकर चारों ओर फैलने लगे, तब उन्होंने बहिरंग भाषाओं के प्रचार के स्थान में बसे हुए आर्यों को दक्षिण की ओर खदेड़ना आरंभ कर दिया। इसी प्रकार अंतरंग-वासी आर्य बहिरंग आर्यों को चीरते हुए गुजरात की ओर चले गए और समुद्र के किनारे तक बस गए। महाभारत के समय में द्वारका का उपनिवेश स्थापित हुआ था और इसके पीछे कई बार आर्य लोग मध्य-देश से जाकर वहाँ बसे थे। डाक्टर ग्रियर्सन का अनुमान है कि ये लोग राजपूताने के मार्ग से गए होंगे; क्योंकि सीधे मार्ग से जाने में मरुदेश पड़ता था, जहाँ का मार्ग बड़ा कठिन था। पीछे की शताब्दियों में आर्य लोग मध्य देश से जाकर राजपूताने में बसे थे। बारहवीं शताब्दी में राठौरों का कन्नौज छोड़कर मारवाड़ में बसना इतिहास-प्रसिद्ध बात है। जयपुर के कछवाहे अवध से और सोलंकी पूर्वी पंजाब से राजपूताने में गए थे। यादव लोग मथुरा से जाकर गुजरात में बसे थे। इन बातों से यह स्पष्ट अनुमान होता है कि मध्यदेश से जाकर आर्य लोग गंगा के दोआबे से लेकर गुजरात में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

समुद्र के किनारे तक बस गए थे और वहाँ के बसे हुए पूर्ववर्त्ती आर्यों को उन्होंने खदेड़कर हटा दिया था। इससे यह स्पष्ट है कि आधुनिक राजस्थानी भाषा के बोलनेवाले मध्य देश के परवर्त्ती आर्य थे; और उस दशा में उनकी भाषा में बहिरंग भाषाओं का कुछ कुछ प्रभाव बाकी रह जाना स्वाभाविक ही है।

राजस्थानी भाषा की चार बोलियाँ हैं—मारवाड़ी, जयपुरी, मेवाती और मालवी। इनके अनेक भेद और उपभेद हैं। मारवाड़ी का पुराना साहित्य डिंगल नाम से प्रसिद्ध है। जो लोग व्रजभाषा में कविता करते थे, उनकी भाषा पिंगल कहलाती थी। जयपुरी में भी साहित्य है। दादूदयाल और उनके शिष्यों की वाणी इसी भाषा में है। मेवाती और मालवी में किसी प्रकार के साहित्य का पता नहीं चला है। इन भिन्न भिन्न बोलियों की बनावट पर ध्यान देने से यह प्रकट होता है कि जयपुरी और मारवाड़ी गुजराती से, मेवाती व्रजभाषा से और मालवी बुंदेलखंडी से बहुत मिलती जुलती है। संज्ञा शब्दों के एकवचन रूप तो प्रायः समान ही हैं, पर बहुवचनों में अंतर पड़ जाता है; जैसे, एकवचन घर, घोड़ा, घोड़ी; पर बहुवचन में इनके रूप क्रमशः घरां, घोडाँ, घोड्याँ हो जाते हैं। जयपुरी और मारवाड़ी की विभक्तियाँ इस प्रकार हैं—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कारक	जयपुरी	मारवाड़ी
संबंध	को, का, की	रो, रा, री
संप्रदान	नै, कै	नै
अपादान	सूँ, सैं	सूँ, ऊँ

व्रजभाषा में अपादान की विभक्ति सों, तें और बुंदेलखंडी की सों, सें होती है जो जयपुरी और मारवाड़ी दोनों से मिलती है। व्रजभाषा और बुंदेलखंडी में संबंध कारक की विभक्ति कौ, के, की तथा गुजराती में नो, ना, नी होती है। जयपुरी की संबंध कारक विभक्ति बुंदेलखंडी और व्रजभाषा से तो मिलती है, पर मारवाड़ी की भिन्न है।

व्यक्तिवाचक सर्वनामों की भी यही अवस्था है। व्रजभाषा और बुंदेलखंडी में एकवचन का मूल रूप मो, मुज, मे या तो, तुज, ते है; पर राजस्थानी में मूँ, त, तूँ है, जो गुजराती से मिलता है। बहुवचन में हम, तुम न होकर म्हाँ, थाँ हो गया है। राजस्थानी में एकवचन के पहले व्यंजन को हकारमय करने की प्रवृत्ति भी है; जैसे म्हा,। सारांश यह कि व्यक्तिवाचक सर्वनामों में कहीं गुजराती से साम्य है, कहीं व्रजभाषा या बुंदेलखंडी से और कहीं उसके सर्वथा स्वतंत्र रूप हैं। निश्चयवाचक सर्वनामों की भी यही अवस्था है।

राजस्थानी भाषाओं की क्रियाओं में एक बड़ी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विशेषता है। इनमें कर्मणि प्रयोग बराबर मिलता है जो पश्चिमी हिंदी में प्रायः नहीं होता। इन भाषाओं की क्रियाओं में धातु रूप वही हैं जो दूसरी आधुनिक भारतीय भाषाओं में मिलते हैं, केवल उनके उच्चारण में कहीं कहीं भेद है। राजस्थानी क्रियाओं में विशेषता इतनी ही है कि वर्तमान काल में उत्तम पुरुष बहुवचन का प्रत्यय आँ होता है, पर प्रथम पुरुष बहुवचन का प्रत्यय सानुनासिक नहीं होता; तथा भूतकाल के बहुवचन का प्रत्यय विशेषण के समान आ होता है। जैसे—

वचन	जयपुरी	मारवाड़ी
वर्त्तमान काल—		
एकवचन		
प्र० पु०	छूँ	हूँ
उ० पु०	छइ	हइ
अ० पु०	छइ	हइ
बहुवचन		
प्र० पु०	छाँ	हाँ
उ० पु०	छो	हो
अ० पु०	छइ	हइ
भूतकाल—		
एकवचन पुंलि०	छो	हो
बहुवचन पुंलि०	छा	हा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

राजस्थानी में क्रियाओं के रूप प्रायः पश्चिमी हिंदी के समान होते हैं। भविष्यत् काल में राजस्थानी के रूप दो प्रकार के होते हैं—(१) एक तो प्राकृत के अनुरूप; जैसे, प्रा० चल्लिस्सामि, चलिहामि, चलस्सूँ, चलहूँ; और (२) दूसरा "गा" या "ला" प्रत्यय लगाकर; जैसे चलूँलो, चलाँला, चलूँला, चलूँगो, चलाँगा।

वाक्य-विन्यास के संबंध में राजस्थानी गुजराती का अनुकरण करती है। पश्चिमी हिंदी में बोलने का अर्थ देनेवाली क्रियाओं के संबंध में जिससे बोला जाय, उसका रूप अपादान कारक में होता है; जैसे—'राम गोविंद से कहता है'। पर गुजराती में इसका रूप संप्रदान कारक का सा होता है; जैसे "राम गोविंद ने कहे छे"। पश्चिमी हिंदी में जब कोई सकर्मक क्रिया सामान्य भूतकाल में प्रयुक्त होती है, तब उसका पुल्लिंग रूप होता है; पर गुजराती में कर्म के अनुसार लिंग होता है; जैसे (प० हिं०) उसने स्त्री को मारा; (गु०) 'तेणे स्त्री ने मारी'। पर राजस्थानी में दोनों प्रकार के प्रयोग होते हैं।

ऊपर जो कुछ कहा गया है, उसका सारांश यही है कि राजस्थानी भाषा पर गुजराती का बहुत प्रभाव पड़ा है। संज्ञाओं के कारक रूपों में यह गुजराती से बहुत मिलती है, पश्चिमी हिंदी से नहीं। राजस्थानी की विभक्तियाँ अलग ही हैं। जहाँ कहीं समानता है, वहाँ गुजराती से अधिक है, पश्चिमी हिंदी से कम।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

(२) **अवधी**—इस भाषा का प्रचार अवध, आगरा प्रदेश, बघेलखंड, छोटा नागपुर और मध्य प्रदेश के कई भागों में है। इसकी प्रचार सीमा के उत्तर में नेपाल की पहड़ी भाषाएँ, पश्चिमी में पश्चिम हिंदी, पूर्व में बिहारी तथा उड़िया और दक्षिण में मराठी भाषाएँ बोली जाती हैं।

प्राचीन समय में यमुना और गंगा की उपत्यका में दो प्रकार की प्राकृतें बोली जाती थीं—एक शौरसेनी प्राकृत थी जो पश्चिम में बोली जाती थी; और दूसरी मागधी थी जो पूर्व में बोली जाती थी। इन दोनों प्राकृत भाषाओं की प्रचार-सीमा के बीच में वह स्थान पड़ता है जो अवधी की सीमा के अंतर्गत आता है। यहाँ ऐसी भाषा का प्रचार था, जो कुछ तो शौरसेनी से मिलती थी और कुछ मागधी से। इस बीच की भाषा को "अर्धमागधी" नाम दिया गया है। इसी प्राचीन अर्धमागधी की स्थानापन्न अवधी भाषा है, जिसे कुछ विद्वानों ने "पूर्वी हिंदी" भी नाम दिया है।

अवधी के अंतर्गत तीन मुख्य बोलियाँ हैं—अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी। अवधी और बघेली में कोई अंतर नहीं है। बघेलखंड में बोली जाने के ही कारण वहाँ अवधी का नाम बघेली पड़ गया है। छत्तीसगढ़ी पर मराठी और उड़िया का प्रभाव पड़ा है और इस कारण वह अवधी से कुछ बातों में भिन्न हो गई है। हिंदी साहित्य में अवधी भाषा ने एक प्रधान स्थान ग्रहण किया

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है। इसके दो मुख्य कवि मलिक मुहम्मद जायसी और गोस्वामी तुलसीदास हैं। मलिक मुहम्मद ने अपने ग्रंथ पद्मावत का आरंभ संवत् १५९७ में और गोस्वामी तुलसीदास ने अपने रामचरितमानस का आरंभ संवत् १६३१ में किया था। दोनों में ३०–३५ वर्ष का अंतर है; पर पद्मावत की भाषा अपने शुद्ध रूप में, जैसी वह बोली जाती थी वैसी ही, है और गोस्वामी तुलसीदास ने उसे साहित्यिक रूप देने का सफलतापूर्वक उद्योग किया है। अवधी के भी दो रूप मिलते हैं—एक पश्चिमी, दूसरा पूर्वी। पश्चिमी अवधी लखनऊ से कन्नौज तक बोली जाती है; अतएव ब्रजभाषा की सीमा के निकट पहुँच जाने के कारण उसका इस पर बहुत प्रभाव पड़ा है और वह उससे अधिक मिलती है। पूर्वी अवधी गोंडे और अयोध्या के पास बोली जाती है। यहाँ की भाषा शुद्ध अवधी है। इस विभेद को स्पष्ट करने के लिये हम दोनों के तीन सर्वनामों के रूप देते हैं।

वर्त्तमान हिंदी	पूर्वी अवधी		पश्चिमी अवधी	
	अविकृत	विकृत	अविकृत	विकृत
कौन	के	के	को	का
जो	जे	जे	जो	जा
वह	से, ते	ते	सो	ता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

क्रियापदों में भी इसी प्रकार का भेद मिलता है। पश्चिमी अवधी में व्रजभाषा के समान साधारण क्रिया का नांत रूप रहता है; जैसे आवन, जान, करन। पर पूर्वी अवधी में उसके अंत में व प्रत्यय आता है; जैसे आव, जाब, करब। इन साधारण क्रियापदों में कारक चिह्न या दूसरी क्रिया लगने पर पश्चिमी अवधी का नांत रूप बना रहता है; जैसे आवन कौं, करन माँ, आवन लाग। पर पूर्वी अवधी में इस अवस्था में साधारण क्रिया का वर्तमान तिङन्त रूप हो जाता है; जैसे आवै कौं, जाय माँ, आवै लाग, करै लाग, सुनै चाहौ। करण के चिह्न के पहले पूर्वी और पश्चिमी दोनों प्रकार की अवधी में भूत कृदंत का रूप हो जाता है; जैसे आए से, चले से, आए सन्, दिए सन्। पश्चिमी अवधी में भविष्यत् काल के उत्तम पुरुष एकवचन का रूप व्रजभाषा के समान ही होता है; जैसे करिहै, सुनिहै; पर पूर्वी अवधी में हि रूप का, जैसे होइहि, आइहि, जाइहि। क्रमशः इस हि के ह के घिस जाने से केवल 'इ' रह गया, जो पूर्व के इ से मिलकर 'ई' हो गया; जैसे आई, जाई, करी, खाई। अवधी साहित्य में दोनों रूप एक ही ग्रंथ में एक साथ प्रयुक्त होते हुए मिलते हैं।

संज्ञा और सर्वनाम के कारक रूपों में भोजपुरी से अवधी बहुत मिलती है। इसके विकृत कारक का प्रत्यय ए होता है। अवधी की विभक्तियाँ भी वही हैं जो भोज-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पुरी की हैं, केवल कर्म कारक और संप्रदान कारक का चिह्न अवधी में 'काँ' और बिहारी में 'के' तथा अधिकरण कारक का चिह्न अवधी में 'माँ' और बिहारी में 'में' है। ये 'काँ' और 'माँ' विभक्तियाँ अवधी की विशेषता की सूचक हैं। सर्वनामों के कारक रूपों में भी बिहारी से अवधी मिलती है। व्यक्तिवाचक सर्वनाम के संबंध कारक एकवचन का रूप पश्चिमी हिंदी में मेरो या मेरा है, पर बिहारी में यह मोर हो जाता है। अवधी में भी बिहारी के समान 'मोर' ही रूप होता है। क्रियापदों में अवधी शौरसेनी की ओर अधिक झुकती है। उदाहरण के लिये हिंदी का 'मारा' शब्द ले लीजिए। संस्कृत में यह मारितः था, शौरसेनी में 'मारिदो' हुआ, जिससे व्रजभाषा में 'मार्यो' बना। इस उदाहरण में पहले त का द हुआ और तब उस द का लोप हो गया। पूर्वी समुदाय की भाषाओं में इस द के स्थान में ल हो जाता है; जैसे मारलो। इसका कारण यह है कि अवधी ने शौरसेनी से सहायता लेकर अपना रूप स्थिर किया है।

यहाँ पर हम संक्षेप में अवधी व्याकरण की कुछ बातें देकर इस भाषा का विवरण समाप्त करते हैं।

संज्ञा—शब्दों के प्रायः तीन रूप होते हैं; जैसे घोड़, घोड़वा और घोड़ौना; नारी, नरिया और नरीवा। इसके कारकों का रूप इस प्रकार होता है—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कारक	अकारांत पुं०	आकारांत पुं०	ईकारांत स्त्री०
एकवचन			
कर्त्ता	घर	घोड़वा	नारी
विकृत	घरा, घरे	घोड़वा	नारी
बहुवचन			
कर्त्ता	घर	घोड़वे, घोड़वने	नारी
विकृत	घरन	घोड़वन	नारिन

संज्ञाओं के साथ जो विभक्तियाँ लगती हैं, वे इस प्रकार हैं—

कर्त्ता—ऐ (आकारांत शब्दों में सकर्मक क्रिया के साथ)
कर्म—के, काँ, कहँ।
करण—सें, सन्, सौं।
संप्रदान—के, काँ, कहँ।
अपादान—सें, तें, सेंती, हुँत।
संबंध—कर (क), केर, कै (स्त्री०)।
अधिकरण—में, माँ, महँ, पर।

विशेषण—विशेषणों का लिंग विशेष्य के अनुसार पतिवर्त्तित हो जाता है। जैसे आपन-आपनि, ऐस-ऐसि, ओकर-ओकरि। बोलचाल में इसका प्रायः ध्यान नहीं रखा जाता, पर साहित्य में इसका विशेष ध्यान रखा जाता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सर्वनाम—भिन्न भिन्न सर्वनामों के रूप इस प्रकार होते हैं—

सर्वनाम	एकवचन			बहुवचन		
	कर्ता	विकृत	संबंध	कर्ता	विकृत	संबंध
मैं	मैं	मो	मोर	हम	हम, हमरे	हमार, हमरे
तू	तैं	तो	तोर	तुम, तूँ	तुम, तुम्हरे	तुम्हार, तुमरे तोहार, तोहरे
आप(स्व)	आप	आप	आपकर	आप	आप	आपकर
आप (पर)	आप	आपु	आपन	आप	आप	आपन
यह	ई	ए, एह, एहि	एकर, एहिकर	इन, ए	इन	इनकर, इनकेर
वह	ऊ, वै	ओ, ओह, ओहि	ओकर, ओहिकेर	उन, ओन	ओन, उन	ओनकर, ओनकेर
जो	जो, जे, जौन	जे, जेहि	जेकर, जेहिकेर	जे	जिन	जिनकर, जिनकेर
सो	सो, से तौन	ते, तेहि	तेकर, तेहिकर	ते	तिन	तिनकर, तिनकेर
कौन	को, कौन के	के, केहि	केकर, केकरे	को, के	किन	किनकर, किनकेर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

क्रियाएँ—इनके रूप भिन्न कालों, वचनों, पुरुषों तथा लिंगों में इस प्रकार होते हैं—

(१) वर्त्तमान काल "मैं हूँ"

पुरुष	एकवचन		बहुवचन	
	पुं०	स्त्री०	पुं०	स्त्री०
उ० पु०	हौं, बाट्यों, अहौं	हइउँ, बाटिउँ, अहिउँ	हई, बाटी, अही	हइन, बाटिन, अहिन
म० पु०	हए, बाटे, बाटिस	हइस, बाटिस	हौ, बाट्यो, अहौ	हइउ, बाटिउ
	अहिस, अहै, अहसि	अहिस	अहैव, अह्यो, अह, अहे	अहिव
अ० पु०	अहै, है, आय, बाटै, बा	ह्वाटई, अहै, है, बाटै, बा	बाटैं, अहैं, हैं, बाटैं	बाटीं, अहैं, बाटिन

भूतकाल "मैं था"

पुरुष	एकवचन		बहुवचन	
	पुं०	स्त्री०	पुं०	स्त्री०
उ० पु०	रह्यों	रहिउँ	रहे	रहे, रहिनि (रहेन)
म० पु०	रहे, रहसि	रहे, रहिसि	रह्यो	रहिउ
अ० पु०	रहा	रही	रहैन, रहिन, रहे	रहीं, रहिन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

(२) सकर्मक-मुख्य क्रियाएँ

क्रियार्थक संज्ञा	देखब
वर्तमान कृदंत कर्तरि	देखत, देखित
भूत कृदंत कर्मणि	देखा
भविष्य कृदंत कर्मणि	देखब
संभावार्थ कृदंत	देखत, देखित
वर्तमान संभावार्थ	(यदि) मैं देखौं

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
उ० पु०	देखौं	देखीं
म० पु०	देखु, देखसि	देखौ
अ० पु०	देखै	देखैं

आज्ञार्थ में एकवचन का रूप देखु, देखसि और बहुवचन का देखउ, देखौ, देखैं (आप) होता है।

भविष्य

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
उ० पु०	देखबूँ, देखबौं, देखिहौं	देखब, देखिहैं
म० पु०	देखबे, देखिहै	देखबौ, देखिहौ
अ० पु०	देखि, देखे, देखिहै	देखिहैं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भूत

पुरुष	एकवचन		बहुवचन	
	पुं०	स्त्री०	पुं०	स्त्री०
उ० पु०	देख्यों	देखिउँ	देखा, देखिन,	देखा, देखिन,
म० ०पु	देखे, देखिस	देखिस, देखे,	देखेन	देखेन
	देखेसि	देखिसि, देखी	देख्यो	देखिउ,, देखीं
अ० पु०	देखेस, देखिस,	देखिसि,	देखेन, देखिन	देखीं, देखिनि
	देखिसि, देख	देखी		

भूत संकेतार्थ

पुरुष	एकवचन		बहुवचन	
	पुं०	स्त्री०	पुं०	स्त्री०
उ० पु०	देखत्यों	देखतिउँ	देखित	देखित
म० पु०	देखते, देखतिस	देखते, देखतिस	देखतेहु, देखत्यो	देखतिउ
अ० पु०	देखत	देखति	देखतेन, देखतिन	देखतिन

वर्तमान सामान्य—देखत अहेउँ,
भूत अपूर्ण—देखत रह्यों।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वर्त्तमान पूर्ण

पुरुष	एकवचन		बहुवचन	
	पुं०	स्त्री०	पुं०	स्त्री०
उ० पु०	देख्यों हौं	देखिउँ हौं	देखा है, देखेन है, देखिन है	देखा है, देख है, देखेन है
म० पु०	देखेस है, देखिस है, देखे है	देखिस है, देखिसि है, देखेहै	देख्यो है	देखिउ है
अ० पु०	देखेप है देखिस है	देखि है देखिसि है	देखेन हैं देखिन हैं	देखिन हैं देखा हैं

अकर्मक क्रियाओं में भूतकाल 'रह्यों' के समान होता है।

बिकारी क्रियाओं में 'जाब' का भूत कृदंत ग, गा, गइ, गय (स्त्री० गइ), गवा (स्त्री० गई) होता है। इसी प्रकार 'होब' का भ, भा, भय, भइ (स्त्री० भइ), भवा (स्त्री० भइ); और करब, देब, लेब आदि का कीन्ह, दीन्ह, लीन्ह आदि होता है। भूतकाल में इनका रूप किहिस, दिहिस, लिहिस होता है। जिन क्रियाओं के धातु रूप का अंतिम अक्षर स्वर होता है, उनमें व प्रत्यय लगता है, य नहीं लगता; जैसे, बनावा। 'जाब' का 'गय' और आउब का 'आय' होता है। जिन क्रियाओं के अंत में आ होता है, उनका भूतकाल न प्रत्यय लगाकर बनता है; जैसे डेरान, रिसियान।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

(३) ब्रज भाषा—यह अंतरंग समुदाय की सब से मुख्य भाषा है। यह शौरसेनी प्राकृत और शौरसेनी अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी है। इसका मुख्य स्थान ब्रजमंडल है; पर इसका प्रचार दक्षिण की ओर आगरे, भरतपुर, धौलपुर और करौली में तथा ग्वालियर के पश्चिमी भाग और जयपुरी के पूर्वी भाग में है। उत्तर की ओर यह गुड़गाँव जिले के पूर्वी भाग तक बोली जाती है। उत्तर-पूर्व की ओर इसका प्रचार बुलंदशहर, अलीगढ़, एटा, मैनपुरी, बदाऊँ, बरेली होते हुए नैनीताल के तराई-परगनों तक चला गया है। इसका केंद्र-स्थान मथुरा है, और वहीं की भाषा शुद्ध ब्रज भाषा है। इस केंद्र-स्थान से जिधर जिधर यह फैली है, उधर उधर की भाषाओं से संसर्ग होने के कारण इसके रूप में कुछ न कुछ विकार हो गया है। इस भाषा की मुख्य विशेषता यह है कि इसकी आकारांत पुल्लिंग संज्ञाएँ, विशेषण और भूतकृदंत तथा कहीं कहीं वर्त्तमान कृदंत भी ओकारांत होते हैं, जैसे घोड़ो, चल्यो, कियो आदि। संस्कृत के घोटक शब्द का प्राकृत रूप घोडओ होता है, जिससे ब्रज भाषा का घोड़ो रूप बना है। इसी प्रकार संस्कृत के भूत और वर्त्तमान कृदंतों के अंतिम त का प्राकृत में अ + ड हो जाता है; जैसे चलितः से चलिअउ; और ब्रज भाषा में यह चल्यो हो गया है। यद्यपि यह ब्रज भाषा का एक प्रधान लक्षण है, पर इसके भी अपवाद हैं। जिस प्रकार संस्कृत में स्वार्थे 'क' का प्रयोग

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

होता है, उसी प्रकार ब्रज भाषा में रा आदि होता है। जैसे हियरा, जियरा, बदरा, छला, लला, चवैया, कन्हैया। खड़ी बोली में यह का और अवधी में वा, ना आदि होता है; जैसे मुखड़ा, बछड़ा, करेजवा, बिधना इत्यादि। ऐसे शब्द न तो ओकारांत होते हैं और न इनके विकृत रूप में आ का ए होता है। ब्रज भाषा की दूसरी विशेषता यह है कि इसके कारक-चिह्न अवधी और खड़ी बोली से भिन्न हैं। यह भिन्नता नीचे की सारिणी से स्पष्ट हो जायगी।

कारक	ब्रज भाषा	अवधी	खड़ी बोली
कर्ता	ने (विकृत)		ने (विकृत)
कर्म	को, (कौं)	के, का, कहँ	को
करण	सों तें	से, सन, सौं	से
संप्रदान	को (कौं)	के, का, कहँ	को
अपादान	तें, सों	सें	से
संबंध	को	कर, कै, केर	का (के, की)
अधिकरण	में, मों, पै, पर	में, माँ, पर	में, पर

इससे यह स्पष्ट है कि अवधी में भूतकालिक सकर्मक क्रियाओं के कर्त्ता के साथ 'ने' का प्रयोग सर्वथा नहीं होता, पर ब्रज भाषा और खड़ी बोली में यह अवश्य होता है। इसी प्रकार कर्म, संप्रदान तथा अधिकरण के रूप खड़ी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बोली के रूपों से मिलते हैं, पर अवधी से नहीं मिलते। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, यह, वह, सो, को (कौन) और जो सर्वनामों के रूप कारक-चिह्नों के लगने के पूर्व व्रज भाषा में या, वा, ता, का और जा हो जाते हैं; जैसे याने, वाको, तासों, काकों, जाको। पर अवधी में इनके रूप यहि, वहि, तेहि, केहि, जेहि होकर तब उनमें कारक-चिह्न लगते हैं। नीचे व्रज भाषा के व्याकरण की मुख्य मुख्य बातें दे देते हैं जिनसे इस भाषा के स्वरूप का स्पष्ट ज्ञान हो जायगा।

संज्ञा

कारक	पुल्लिंग		स्त्रीलिंग
	आकारांत	अकारांत	ईकारांत
एकवचन	घोड़ा	घर	घोड़ी,
कर्त्ता	घोड़ो, घोड़े ने	घर, घर	घोड़ी, घोड़ी ने
विकृत	घोड़े	घर	घोड़ी
बहुवचन	घोड़े	घर	घोड़ियाँ
कर्त्ता	घोड़े, घोड़न ने	घर	घोड़ियाँ–घोड़ियन ने, घोड़ियान नें
विकृत	घोड़न, घोड़ान	घरन	घोड़ियन, घोड़ियान

विभक्ति

कर्ता—ने करण, अपादान—सों, तें।
कर्म, संप्रदान—को अधिकरण—में, मों, पै
संबंध—को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

सर्वनाम एकवचन

कारक	मैं	तू	वह	यह	जो	सो	कौन ?	क्या ?
कर्त्ता विकृत	मैं, हौं मैने	तू, तैं तूने, तैने	वह, वो वाने, ताने	यह याने	जो, जौन* जाने	सो, तौन* ताने	को काने	कहा, का
कर्म० संप्र० संबंध	मोहि (मोय) मोकौं मेरो	तोहि (तोय) तोकौं तेरो, तिहारो, तुम्हारो	वाहि (वाय), ताहि (ताय), ताकौं वाको, ताको, तासु	याहि (याय) याकौं याको	जाहि (जाय) जाकौं जाको, जासु	ताहि (ताय), ताकौं ताको, तासु	काहि (काय), काकौं काको	
करण० अपा० अधि०	मोसौं, मोतैं मोमें, मोपै	तोसौं, तोतैं, तोहितैं तोहिमें, तोमैं, तोपैं, तोहिपै	वासौं, तासौं, वातैं, तातैं वामें, तामें, वापै, तापै	यासौं, यातैं यामें, यापै	जासौं, जातैं जामें, जापै	तासौं, तातैं तामें, तापै	कासौं, कातैं कामें, कापै	

* व्रज में केवल "सो" के पहले यह रूप आता है; जैसे, जौन सो लेनो होय, ले ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सर्वनाम—बहु वचन

कारक	मैं	तू	वह	यह	जो	सो	कौन ?
कर्ता विकृत	हम हमने	तुम तुमने	वे, वै, ते उनने, विनने, तिनने	ये इनने	जो, जे जिनने	ते तिनने	को, के किनने
कर्म० संप्र० संबंध	हमहिं, हमैं हमकौं हमारो, म्हारो	तुमहिं, तुम्हैं, तुमकौं तुम्हारो, तिहारो	उनहिं, उन्हें, तिनहि, तिन्हैं, उनकौं, तिनकौं उनको, विनको	इनहिं, इन्हैं, इनकौं इनको	जिनहिं, जिन्हे जिनकौं जिनको	तिनहि, तिन्हें तिनकौं तिनको	किनहिं, कि- न्हैं, किनकों किनको
करण० अपा० अधि०	हमसों, हमतें हममें, हमपै	तुमसों, तुमतें तुममें, तुमपै	उनसों, उनतें, विन- सों, विनतें, तिनसो, तिनतें उनमें, उनपै, तिनमें, तिनपै, विनमें, विनपै	इनसों, इनतें इनमें, इनपै	जिनसों, जिनतें जिनमें, जिनपै	तिनसों, तिनतें तिनमें, तिनपै	किनसों, किनतें किनमें, किनपै

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE
Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

(१) क्रियाएँ

वर्त्तमान काल—करना * "मैं हूँ"

पुरुष	एकवचन		बहुवचन	
	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
उ० पु०	करत हौं, करूँ हूँ	करति हौं, करूँ हूँ	करत हैं, करैं है	करति हैं, करैं हैं
म० पु०	करत है, करै है	करति है, करै है	करतहैं, करौ हौ	करति हौ, करौ हौ
अ० पु०	करत है, करै है	करति है, करै है	करत हैं, करैं हैं	करति हैं, करैं हैं

भूतकाल (सकर्मक) ❀ "मैं था"

पुरुष	एकवचन		बहुवचन	
	पुंल्लिंग	स्त्रीलिंग	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
उ० पु०	कियो, कीन्हों, कय्यो	कियो, कीन्हों, कय्यो	कियो, कीन्हों, कय्यो	कियो, कीन्हों, कय्यो
म० पु०	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,
अ० पु०	,, ,,	,, ,,	,, ,,	,, ,,

(२) सकर्मक—मुख्य क्रियाएँ

क्रियार्थक संज्ञा करनो, करिबो, कीबो

* कर्ता के लिंगवचन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वर्तमान कृदंत कर्तरि करतो, करती

भूत ,, कर्मणि कियो;कीन्हो,करयो या कियो,गयो

वर्तमान संभावार्थ "मैं देखूँ"

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
उ० पु०	(मैं) देखूँ	(हम) देखैं
म० पु०	(तू) देखै	(तुम) देखो
अ० पु०	(वह) देखै	(वे) देखैं

आज्ञार्थ में एकवचन का रूप 'देख' और बहुवचन का रूप 'देखौ' होता है।

भविष्य "देखना"

पुरुष	एकवचन		बहुवचन	
	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
उ० पु०	देखूँगो, देखिहौं	देखूँगी, देखिहौं	देखैंगे, देखिहैं	देखैंगी, देखिहैं
म० पु०	देखैगो, देखिहै	देखैगी, देखिहै	देखौगे, देखिहौ	देखौगी, देखिहौ
अ० पु०	देखैगो, देखिहै	देखैगी, देखिहै	देखैंगे, देखिहौं	देखैंगी, देखिहैं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भूत (अकर्मक) "जाना"

पुरुष	एकवचन		बहुवचन	
	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
सब पुरुषों मे समान	गयो	गई	गए	गईं

भूत संकेतार्थ "करना"

पुरुष	एकवचन		बहुवचन	
	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
सबपुरुषों में समान	करतो	करती	करते	करतीं

वर्तमान पूर्ण (सकर्मक) * "करना"

पुरुष	एकवचन		बहुवचन	
	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
सब पुरुषों में समान	कियो है, कीन्हो है	कियो है, कीन्हो है	कियो है, कीन्हो है	कियो है, कीन्हो है

* कर्ता के लिंग वचन के अनुसार रूप में कोई परिवर्तन नहीं होता।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वर्तमान पूर्ण (अकर्मक) "जाना"

	एकवचन		बहुवचन	
	पुं०	स्त्री०	पुं०	स्त्री०
उ० प्र०	गयो हौं	गई हौं	गए हैं	गई हैं
म० प०	गयो है	गई है	गए हौ	गई हौ
अ० पु०	गयो है	गई है	गए हैं	गई हैं

(४) **बुँदेली भाषा**—ब्रज से मिलती जुलती या उसी की एक शाखा बुँदेली या बुंदेलखंडी भी है, जिसकी छाया कवियों की भाषा में बराबर मिलती है। यह भाषा बुंदेलखंड, ग्वालियर और मध्य प्रदेश के कुछ जिलों में बोली जाती है। इसकी विस्तार-सीमा के पूर्व ओर पूर्वी हिंदी की बघेली बोली, उत्तर-पश्चिम की ओर ब्रज भाषा, दक्षिण-पश्चिम की ओर राजस्थानी और दक्षिण की ओर मराठी भाषाओं का साम्राज्य है। उत्तर, पूर्व और पश्चिम की ओर तो यह क्रमशः उन दिशाओं में बोली जानेवाली भाषाओं में लीन हो जाती है और वहाँ इसका मिश्र रूप देख पड़ता है; पर दक्षिण की ओर यह मराठी से बहुत कम मिलती है। यद्यपि इसकी कई बोलियाँ बताई जाती हैं, पर वास्तव में सर्वत्र इसका एक सा ही रूप है। इधर उधर जो अंतर देख पड़ता है, वह नाम मात्र का है।

साहित्य में बुँदेली का सब से अच्छा नमूना आल्हा-

CC-6 In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

खंड में मिलता है। पर इस ग्रंथ की कोई प्राचीन हस्तलिखित प्रति न मिलने तथा इसका अस्तित्व आल्हा गानेवालों की स्मरण शक्ति पर निर्भर रहने के कारण इसने भिन्न भिन्न प्रांतों में भिन्न भिन्न रूप धारण कर लिए हैं। इसमें बहुत कुछ क्षेपक अंश भी मिल गया है, इससे इसका वास्तविक प्राचीन रूप अब प्राप्त नहीं है। कवि केशवदास बुंदेलखंड के रहनेवाले थे, अतएव उनकी भाषा में बुँदेली का बहुत कुछ अंश वर्तमान है। नीचे इस भाषा की व्याकरण-संबंधी मुख्य मुख्य बातों का उल्लेख करके इसके रूप का परिचय दिया जाता है।

पूर्वी भाषाओं में जहाँ लघु उच्चारणवाला ए और ओ होता है, वहाँ बुंदेलखंडी में इ और उ होता है; जैसे, घोड़िया, घुड़िया। कहीं कहीं ऐसे रूप भी मिलते हैं, जैसे, बिलैवा, चिरैवा आदि। हिन्दी की विभाषाओं में संज्ञाओं के पाँच रूप होते हैं, अकारांत, आकारांत, वाकारांत और "औवा" तथा "औना" से अंत होनेवाले; जैसे, घोड़, घोड़ा, घोड़वा, घोड़ौवा, घोड़ौना। पर सब भाषाओं में ये सब रूप नहीं मिलते हैं। हिंदी के आकारांत पुल्लिंग शब्द बुँदेली में ब्रज भाषा के समान ओकारांत हो जाते हैं; पर संबंधसूचक शब्दों में यह विकार नहीं होता; जैसे दादा, काका। हिंदी में जो स्त्रीलिंग शब्द, 'इन' प्रत्यय लगाने से बनते हैं, वे बुँदेली में 'नी' प्रत्यय लेते हैं; जैसे तेली-तेलिन; बुँ० तेलनी। बुँदेली के कारक हिंदी के ही समान होते हैं। ओकारांत तद्भव संज्ञाओं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

का विकृत कारक रूप एकवचन में ए और बहुवचन में अन होता है; जैसे, एकवचन, घोड़ो—विकृत, घोड़े; बहुवचन, घोड़े—विकृत, घोड़न। दूसरे प्रकार की पुल्लिंग संज्ञाएँ एकवचन में नहीं बदलतीं; परंतु कर्त्ता के तथा विकृत कारक के बहुवचन में इनके अंत में "अन" आता है। कभी कभी कुछ आकारांत शब्दों का बहुवचन आँ से भी बनता है। "इया" से अंत होनेवाले स्त्रीलिंग शब्दों का बहुवचन "इयाँ" और विकृत बहुवचन "इयन" लगाने बनता है। दूसरे प्रकार के स्त्रीलिंग शब्दों का कर्त्ता बहुवचन एँ प्रत्यय लगाने से बनता है। ईकारांत शब्दों के बहुवचन में "ई" और विकृत बहुवचन में "अन" या "इन" प्रत्यय लगता है।

बुंदेलखंडी में जो विभक्तियाँ लगती हैं, वे इस प्रकार हैं—

कर्त्ता विकृत	ने, नें
कर्म, संप्रदान	कों, खों
करण, अपादान	से, सें, सों,
संबंध	मै, में
अधिकरण	को, के, की

बुँदेली में सर्वनामों के रूप इस प्रकार होते हैं—

एकवचन	मैं	तू
कर्ता	मे, मैं	तूँ, तैं
वि०	मैंने	तैंने
संबंध	मोको; मेरो, मोरो, मोने	तोको, तेरो, तोरो, तोने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

	बहुवचन	
कर्ता	हम	तुम
संबंध	हमको, हमारो, हमाओ	तुमको, तुमारो, तुमाओ
विकृत	हम	तुम

अन्य-पुरुष सर्वनाम का रूप वो या ऊँ होता है। इनका बहुवचन वे और विकृत बहुवचन विन या उन होता है।

क्रियाओं के संबंध में नीचे कुछ रूप दिए जाते हैं।

अकर्मक वर्तमान

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
उ० पु०	हौं, आँवँ, आँव	हैं, आँयँ
म० पु०	हे, आय	हो, आव
अ० पु०	है, आय	हैं, आँयँ

अकर्मक भूत

पुरुष	एकवचन		बहुवचन	
	पुं०	स्त्री०	पुं०	स्त्री०
उ० पु०	हतो, तो	हती, ती	हते, ते	हतीं, तीं
म० पु०	हतो, तो	हती, ती	हते, ते	हतीं, तीं
अ० पु०	हतो, तो,	हती, ती	हते, ते	हतीं, तीं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भविष्यत् काल में दोनों रूप होते हैं, हुहौं, हौंगो; मारिहौं, मारूँगो; मारिहैं, मारेंगे।

इस संक्षिप्त विवरण से यह स्पष्ट हो जायगा कि बुंदेलखंडी ब्रज भाषा की ओर बहुत झुकती है और इसलिये वह पश्चिमी हिंदी के अंतर्गत मानी गई है।

(५) **खड़ी बोली**—इस भाषा का इतिहास बड़ा ही रोचक है। यह भाषा मेरठ के चारों ओर के प्रदेश में बोली जाती है और पहले वहीं तक इसके प्रचार की सीमा थी, बाहर इसका बहुत कम प्रचार था। जब मुसलमान इस देश में बस गए और उन्होंने यहाँ अपना राज्य स्थापित कर लिया, तब उन्हें इस बात की चिंता हुई कि यहाँवालों से किस भाषा में बात चीत करें। दिल्ली में मुसलमानी शासन का केंद्र होने के कारण उन्होंने मेरठ की भाषा खड़ी बोली को ग्रहण किया। अतएव मुसलमानों के उर्दू (फौजी बाजारों) में इसका व्यवहार होने लगा; और जहाँ जहा मुसलमान फैलते गए, इस भाषा को अपने साथ लेते गए। क्रमशः इसमें अरबी और फ़ारसी के शब्द घुसने लगे। पर आरंभ में यह उनको सुगमता से ग्रहण करती और अपना रूप देती गई। पीछे यह प्रवृत्ति बदल गई और मुसलमानों ने इसमें केवल फ़ारसी तथा अरबी के शब्दों की ही उनके शुद्ध रूप में अधिकता नहीं कर दी, बल्कि उसके व्याकरण पर भी फ़ारसी-अरबी व्याकरण का पुट चढ़ाना आरंभ कर दिया। इस अवस्था में इसके दो रूप हो गए;

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एक तो हिंदी ही कहलाता रहा, और दूसरा उर्दू नाम से प्रसिद्ध हुआ। दोनों के प्रचलित शब्दों को ग्रहण करके, पर व्याकरण का संघटन हिंदी ही के अनुसार रखकर, अँगरेजों ने इसका एक तीसरा रूप 'हिंदोस्तानी' बनाया अतएव इस समय इस खड़ी बोली के तीन रूप वर्तमान हैं—(१) शुद्ध हिंदी—जो हिंदुओं की साहित्यिक भाषा है और जिसका प्रचार हिंदुओं में है। (२) उर्दू—जिस का प्रचार विशेषकर मुसलमानों में है और जो उनके साहित्य की और शिष्ट मुसलमानों तथा कुछ हिंदुओं की घर के बाहर की बोल-चाल की भाषा है। और (३) हिंदोस्तानी—जिसमें साधारणतः हिंदी उर्दू दोनों के शब्द प्रयुक्त होते हैं और जिसे सब लोग बोल-चाल में काम में लाते हैं। इसमें अभी साहित्य की रचना बहुत कम हुई है। इस तीसरे रूप के मूल में राजनीतिक कारण हैं। हम इन तीनों रूपों पर अलग अलग विचार करेंगे। पर ऐसा करने के पहले इस बात पर ध्यान दिलाना चाहते हैं कि इसकी व्युत्पत्ति के विषय में जो बहुत से विचार फैल रहे हैं, वे भ्रमात्मक हैं। कुछ लोगों का यह कहना है कि आरंभ में हिंदी या खड़ी बोली ब्रज भाषा से उत्पन्न हुई और मुसलमानों के प्रभाव से इसमें सब प्रकार के शब्द सम्मिलित हो गए और इसने एक नया रूप धारण किया। इस कथन में तथ्य बहुत कम है। खड़ी बोली का प्रचार भी उसी समय से है, जब से अवधी या ब्रज भाषा का है। भेद केवल इतना ही है कि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ब्रज भाषा तथा अवधी में साहित्य की रचना बहुत पहले से होती आई है और खड़ी बोली में साहित्य की रचना अभी थोड़े दिनों से होने लगी है। पूर्व काल में खड़ी बोली केवल बोल-चाल की भाषा थी। मुसलमानों ने इसे अंगीकार किया और आरंभ में उन्हींने इसको साहित्यिक भाषा बनाने का गौरव भी पाया। खड़ी बोली का सब से पहला कवि अमीर खुसरो है जिसका जन्म सं० १३१२ में और मृत्यु संवत् १३८१ में हुई थी। अमीर खुसरो ने मसनवी ख़िज़्र नामः में, जिसमें मुख्यतः सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के पुत्र ख़िज़्रख़ाँ और देवल देवी के प्रेम का वर्णन है, हिंदी भाषा के विषय में जो कुछ लिखा है, वह उल्लेख के योग्य है। वे लिखते हैं—

"मैं भूल में था; पर अच्छी तरह सोचने पर हिंदी भाषा फ़ारसी से कम नहीं ज्ञात हुई। अरबी के सिवाय, जो प्रत्येक भाषा की मीर और सबों में मुख्य है, रई (अरब का एक नगर) और रूम की प्रचलित भाषाएँ समझने पर हिंदी से कम मालूम हुई। अरबी अपनी बोली में दूसरी भाषा को नहीं मिलने देती, पर फ़ारसी में यह कमी है कि बिना मेल के काम में आने योग्य नहीं है। इस कारण कि वह शुद्ध है और यह मिली हुई है, उसे प्राण और इसे शरीर कह सकते हैं। शरीर में सभी वस्तुओं का मेल हो सकता है, पर प्राण से किसी का नहीं हो सकता। यमन के मूँगे से दरी के मोती की उपमा देना शोभा नहीं देता।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सब से अच्छा धन वह है जो अपने कोष में बिना मिलावट के हो; और न रहने पर माँगकर पूँजी बनाना भी अच्छा है। हिंदी भाषा भी अरबी के समान है; क्योंकि उसमें भी मिलावट का स्थान नहीं है।"

खुसरो ने हिंदी और अरबी-फारसी शब्दों का प्रचार बढ़ाने तथा हिंदू-मुसलमानों में परस्पर भाव-विनियम में सहायता पहुँचाने के उद्देश से ख़ालिक़ बारी नाम का एक कोष पद्य में बनाया था। कहते हैं कि इस कोष की लाखों प्रतियाँ लिखवाकर तथा ऊँटों पर लदवाकर सारे देश में बाँटी गई थीं। अतएव अमीर खुसरो खड़ी बोली के आदि कवि ही नहीं हैं, वरन् उन्होंने हिंदी तथा फ़ारसी-अरबी में परस्पर आदान-प्रदान में भी अपने भरसक सहायता पहुँचाई थी। विक्रम की १४ वीं शताब्दी की खड़ी बोली की कविता का नमूना खुसरो की कविता में अधिकता से मिलता है; जैसे—

टट्टी तोड़ के घर में आया।
अरतन बरतन सब सरकाया॥
खा गया, पी गया, दे गया बुत्ता।
ए सखि! साजन, ना सखि कुत्ता॥

स्याम बरन की है एक नारी।
माथे ऊपर लागै प्यारी॥
जो मानुस इस अरथ को खोलै।
कुत्ते की वह बोली बोलै॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हिंदू कवियों ने भी अपनी कविता में इस खड़ी बोला का प्रयोग किया है। प्रायः मुसलमानों की बातचीत वे खड़ी बोली में लिखते थे। भूषण ने शिवाबावनी में अनेक स्थानों में इस भाषा का प्रयोग किया है। उनमें से कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

(१) अब कहाँ पानी मुकुतों में पाती हैं।

(२) खुदा की कसम खाई है।

(३) अफजलखान को जिन्होंने मैदान मारा।

ललितकिशोरी की एक कविता का उदाहरण लीजिए—

जंगल में हम रहते हैं, दिल बस्ती से घबराता है।
मानुस गंध न भाती है, मृग मरकट संग सुहाता है॥
चाक गरेबाँ करके दम दम आहें भरना आता है।
ललितकिशोरी इश्क रैन दिन ये सब खेल खेलाता है॥

अतएव यह सिद्ध है कि खड़ी बोली का प्रचार सोलहवीं शताब्दी में अवश्य था, पर साहित्य में इसका अधिक आदर नहीं था। अट्ठारहवीं शताब्दी में हिंदी के गद्य की रचना आरंभ हुई और इसके लिये खड़ी बोली ग्रहण की गई। पर इससे यह मानना कि उर्दू के आधार पर हिंदी (खड़ी बोली) की रचना हुई, ठीक नहीं है। पंडित चंद्रधर गुलेरी ने लिखा है—"खड़ी बोली या पक्की बोली या रेखता या वर्तमान हिंदी के आरंभ काल के गद्य और पद्य को देखकर यही जान पड़ता है कि उर्दू रचना में फ़ारसी-अरबी तत्समों या तद्भवों को निकालकर संस्कृत या हिंदी तत्सम

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और तद्भव रखने से हिंदी बना ली गई है। इसका कारण यही है कि हिंदू तो अपने घरों की प्रादेशिक और प्रांतीय बोली में रँगे थे, उनकी परंपरागत मधुरता उन्हें प्रिय थी। विदेशी मुसलमानों ने आगरे, दिल्ली, सहारनपुर, मेरठ की "पड़ी" भाषा को "खड़ी" बनाकर अपने लश्कर और समाज के लिये उपयोगी बनाया, किसी प्रांतीय भाषा से उनका परंपरागत प्रेम न था। उनकी भाषा सर्व साधारण की या राष्ट्र-भाषा हो चली, हिंदू अपने अपने प्रांत की भाषा को न छोड़ सके। अब तक यही बात है। हिंदू घरों की बोली प्रादेशिक है, चाहे लिखा-पढ़ी और साहित्य की भाषा हिंदी हो; मुसलमानों में बहुतों के घर की बोली खड़ी बोली है। वस्तुतः उर्दू कोई भाषा नहीं है, हिंदी की विभाषा है। किंतु हिंदुई भाषा बनाने का काम मुसलमानों ने बहुत कुछ किया, उसकी सार्वजनिकता भी उन्हीं की कृपा से हुई। फिर हिंदुओं में जाग्रति होने पर उन्होंने हिंदी को अपना लिया। हिंदी गद्य की भाषा लल्लूजी लाल के समय से आरंभ होती है। उर्दू गद्य उससे पुराना है; खड़ी बोली की कविता हिंदी में नई है। अभी तक ब्रज भाषा बनाम खड़ी बोली का झगड़ा चल ही रहा था, उर्दू पद्य की भाषा उसके बहुत पहले हो गई है। पुरानी हिंदी गद्य और पद्य खड़े रूप में मुसलमानी है।"

यद्यपि गुलेरी जी का यह निष्कर्ष कि "खड़ी बोली ने मुसलमानी राजाश्रय पाकर उन्नति की और उसका प्रचार चारों ओर फैला तथा मुसलमानों की कृपा के ही कारण हिंदी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के इस खड़ी बोली रूप का इतना महत्व हुआ" सर्वथा सत्य है और इसके लिये हमें उनका उपकार मानना चाहिए। परंतु उनका यह कहना कि "उर्दू-रचना में फ़ारसी, अरबी तत्सम या तद्भव रखने से हिंदी बना ली गई" ठीक नहीं है। पहले तो उर्दू का आदि कवि मुहम्मद कुली माना जाता है। संवत् १६३७ में गोलकुंडे के बादशाह सुलतान इब्राहीम की मृत्यु पर उसका पुत्र मुहम्मद कुली कुतुबशाह गद्दी पर बैठा। पर हिंदी का खड़ी बोलीवाला रूप हमें साहित्य में १३०० वि० के आरंभ में अर्थात् उर्दू के आदि कवि से कोई ३०० वर्ष पहले भी मिलता है। इसलिये यह कहना ठीक नहीं है कि उर्दू के आधार पर हिंदी का खड़ी बोली रूप प्रस्तुत हुआ। मुहम्मद कुली के कई सौ वर्ष पहले से उर्दू पर ब्रज की काव्यमयी भाषा का प्रभाव पड़ चुका था। मुसलमानों की उर्दू कविता में भी ब्रज भाषा के रस-परिपुष्ट शब्दों का बराबर और निस्संकोच प्रयोग होता था। पीछे के उर्दू कवियों ने इस काव्य भाषा के शब्दों से अपना पीछा छुड़ाया और खड़ी बोली को अरब और फारस की वेशभूषा से सुसज्जित करके उसे स्वतंत्र रूप दे दिया। अतएव यह कहना तो ठीक है कि उर्दू वास्तव में हिंदी की 'विभाषा' है, पर यह कहना सर्वथा अनुचित है कि उर्दू के आधार पर हिंदी खड़ी हुई है। "उर्दू कविता पहले स्वभावतः देश की काव्य भाषा का सहारा लेकर उठी, फिर जब टाँगों में बल आया, तब किनारे हो गई।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इसी प्रकार हिंदी गद्य के विषय में भी भ्रम फैल रहा है। लल्लूजी लाल हिंदी गद्य के जन्मदाता माने जाते हैं। वास्तव में उन्होंने हिंदी गद्य को आधुनिक रूप नहीं दिया। उनके और पहले का मुं० सदासुख के लिखे भागवत का हिंदी अनुवाद "सुखसागर" वर्त्तमान है। उसका कुछ अंश नीचे उद्धृत करके हम यह दिखलाना चाहते हैं कि लल्लू जी लाल के पहले ही हिंदी गद्य का आरंभ हो चुका था।

"धन्य कहिये राजा पृथुजी को, नारायण के अवतार हैं, कि जिन्होंने पृथ्वी मंथन करके अन्न उपजाया, ग्राम नगर बसाये, और किसी से सहायता न माँगी, कि किसी और से सहाय चाहैंगे तो उसे दुख होयगा, वह दुख आपको होय, इस हेत अपने पराक्रम से जो कुछ बन आया सो किया, फिर कैसा कुछ किया कि इसका काम पिरथी राजा पृथु के नाम से प्रसिद्ध है।"

इसके अनंतर लल्लूजी लाल, सदल मिश्र तथा इंशा-अल्लाखाँ का समय आता है। लल्लूजी लाल के प्रेमसागर से सदल मिश्र के नासिकेतोपाख्यान की भाषा अधिक पुष्ट और सुंदर है। प्रेमसागर में भिन्न भिन्न प्रयोगों के रूप स्थिर नहीं देख पड़ते। करि, करिके, बुलाय, बुलाय करि, बुलाय कर, बुलाय करिके आदि रूप अधिकता से मिलते हैं। सदल मिश्र में यह बात नहीं है। इंशा अल्लाखाँ की रचना में शुद्ध तद्भव शब्दों का प्रयोग है। उनकी भाषा सरल और सुंदर है, पर वाक्यों की रचना उर्दू ढंग की है। इसी लिये कुछ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लोग इसे हिंदी का नमूना न मानकर उर्दू का पुराना नमूना मानते हैं। सारांश यह है कि यद्यपि फोर्ट विलियम कालेज के अधिकारियों, विशेषकर डाक्टर गिलक्रिस्ट की कृपा से हिंदी गद्य का प्रचार बढ़ा और उसका भावी मार्ग प्रशस्त तथा सुव्यवस्थित हो गया, पर लल्लूजी लाल उसके जन्म-दाता नहीं थे। जिस प्रकार मुसलमानों की कृपा से हिंदी (खड़ी बोली) का प्रचार और प्रसार बढ़ा, उसी प्रकार अँगरेजों की कृपा से हिंदी गद्य का रूप परिमार्जित और स्थिर होकर हिंदी के साहित्य में एक नया युग उपस्थित करने का मूल आधार अथवा प्रधान कारण हुआ।

हम पहले यह बात कह चुके हैं कि उर्दू भाषा हिंदी की विभाषा थी। इसका जन्म हिंदी से हुआ और उसका दुग्ध-पान करके यह पालित पोषित हुई। पर जब यह शक्ति-संपन्न हो गई, इसमें अपने पैरों पर खड़े होने की शक्ति आ गई और मुसलमानों के लाड-प्यार से यह अपने मूल रूप को भूलकर अपने पृष्ठ-पोषकों को ही सब कुछ समझने लग गई, तब इसने क्रमशः स्वतंत्रता प्राप्त करने का उद्योग किया। पर यह स्वतंत्रता नाम मात्र की थी। उसने हिंदी से, जहाँ तक संभव हुआ, अलग होने में ही अपनी स्वतंत्रता समझी। पर वास्तव में वह अपनी जन्मदात्री को भूलकर तथा अरबी-फारसी के जाल में फँसाकर अपने आप को उसी प्रकार धन्य मानने लगी, जिस प्रकार एक अविकसित, अनुन्नत अथवा अधोगत जाति अपने विजेता की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नक़ल करके उसका विकृत रूप धारण करने में ही अपना सौभाग्य समझती और अपने को धन्य मानती है। इस प्रकार उर्दू निरंतर हिंदी से अलग होने का उद्योग करती आ रही है। चार बातों में हिंदी से उर्दू की विभिन्नता हो रही है—

(१) उर्दू में अरबी-फारसी के शब्दों का अधिकता से प्रयोग हो रहा है; और वह भी तद्भव रूप में नहीं, वरन् तत्सम रूप में।

(२) उर्दू पर फारसी के व्याकरण का प्रभाव बहुत अधिकता से पड़ रहा है। उर्दू शब्दों के बहुवचन हिंदी के अनुसार न बनकर फारसी के अनुसार बन रहे हैं; जैसे कागज, कसबा या अमीर का बहुवचन कागजों, कसबों या अमीरों न होकर कागजात, कसबात, उमरा आदि होता है; और ऐसे बहुवचनों का प्रयोग अधिकता से बढ़ रहा है।

(३) संबंध कारक की विभक्ति के स्थान में 'ए' की इज़ाफत करके शब्दों का समस्त रूप बनाया जाता है; जैसे, सितारे-हिंद, दफ्तरे-फौजदारी, मालिके-मकान। इसी प्रकार करण और अपादान कारक की विभक्ति 'से' के स्थान में 'अज़' शब्द का प्रयोग होता है; जैसे अज़ खुद, अज़ तरफ़। अधिकरण कारक की विभक्ति के स्थान में भी 'दर' विभक्ति का प्रयोग होता है; जैसे, दर असल, दर हकीकत। कहीं कहीं दर के स्थान में अरबी प्रत्यय 'फ़िल' का भी प्रयोग होता है; जैसे, फ़िलहाल, फ़िलहक़ीक़त।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

(४) हिंदी और उर्दू की सबसे अधिक विभिन्नता वाक्य-विन्यास में देख पड़ती है। हिंदी के वाक्यों में शब्दों का क्रम इस प्रकार होता है कि पहले कर्ता, फिर कर्म और अंत में क्रिया होती है; पर उर्दू की प्रवृत्ति यह देख पड़ती है कि इस क्रम में उलट फेर हो। उर्दू में क्रिया कभी कभी कर्त्ता के पहले भी रख देते हैं; जैसे "राजा इंदर का आना" न कहकर "आना राजा इंदर का" कहते हैं। इसी प्रकार यह न कहकर कि 'उसने एक नौकर से पूछा' यह कहेंगे—'एक नौकर से उसने पूछा'।

नीचे हम उदाहरण के लिये उर्दू के एक लेख से कुछ अंश उद्धृत करते हैं, जिससे ऊपर लिखी चारों बातें स्पष्ट रूप से समझ में आ जायँगी।

"क़स्बः निगोहा के जानिबे दखिन एक मंदिर महादेव जी का है, जिसको भौरेसर कहते हैं, और किनारे दरियाए सई के वाक़अ है। और वहाँ पर हर दुशंबः को मेला होता है, और अक्सर लोग हर रोज़ दरशन को बिला नाग़ः जाया करते हैं, और जो मक़सदे दिली रखते हैं, वोह पूरा होता है। सुनने में आया है कि एक वक्त में औरंगज़ेब बादशाह भी उनके मंदिर पर तशरीफ़ लाए थे। और उनकी यह मंशा थी कि इस मंदिर को खुदवाकर मूरत को निकलवा लेवें, और सदहा मजदूर उस मूरत के निकालने को मुस्तइद हुए, लेकिन मूरत की इंतहा न मअलूम हुई। तब बादशाह ने ग़ुस्से में आकर इजाजत दी कि इस

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मूरत को तोड़ डालो। तब मज़दूरों ने तोड़ना शुरूअ किया, और दो एक ज़र्ब मूरत में लगाई, बल्कि कुछ शिकस्त भी हो गई, जिसका निशान आज तक भी मौजूद है, और क़तरे खून भी मूरत से नमूद हुआ; लेकिन ऐसी क़ुदरत मूरत की ज़ाहिर हुई और उसी मूरत के नीचे से हज़ारहा भौंरे निकल पड़े और सब फ़ौजें बादशाह की भौंरों से परेशान हुईं। और यह खबर बादशाह को भी मअलूम हुई। तब बादशाह ने हुक्म दिया कि अच्छा, इस मूरत का नाम आज से भौरेसर हुआ और जिस तरह पर थी, उसी तरह से बंद कर दो। और खुद बादशाह ने मूरत मज़कूर बंद कराने का इंतज़ाम कर दिया।"

हिंदोस्तानी भाषा के विषय में इतना ही कहना है कि इसकी सृष्टि अँगरेजी राजनीति के कारण हुई है। हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं को मिलाकर, अर्थात् इन दोनों भाषाओं के शब्दों में से जो शब्द बहुत अधिक प्रचलित हैं, उन्हें लेकर तथा हिंदी व्याकरण के सूत्र में पिरोकर इस भाषा को रूप दिया जा रहा है। यह उद्योग कहाँ तक सफल होगा, इस विषय में भविष्यद् वाणी करना कठिन ही नहीं, अनुचित भी है। जिस प्रकार राजनीति के प्रभाव में पड़कर हिंदी के अवधी तथा व्रज भाषा रूप, जिनमें साहित्य की बहुमूल्य रचना हुई है, अब धीरे धीरे पीछे हटते जा रहे हैं और उनके स्थान में खड़ी बोली, जो किसी समय में केवल बोलचाल की भाषा थी और जिसमें कुछ भी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

साहित्य नहीं था, अब आगे बढ़ती आ रही है तथा उनका स्थान ग्रहण करती जा रही है, वैसे ही कौन कह सकता है कि दो एक शताब्दियों में भारतवर्ष की प्रधान बोलचाल तथा साहित्य की भाषा हिंदोस्तानी न हो जायगी, जिसमें केवल हिंदी उर्दू के शब्दों का ही मिश्रण न होगा, वरन् अँगरेजी भी अपनी छाप बनाए रहेगी। भारतीय भाषाओं के इतिहास से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि जब जब बोलचाल की भाषा ने एक ओर साहित्यिक रूप धारण किया, तब तब दूसरी ओर बोलचाल के लिये भाषा ने परिवर्त्तित होकर दूसरा नया रूप धारण किया; और फिर उसके भी साहित्यिक रूप धारण करने पर बोलचाल की भाषा नए रूप में चल पड़ी। यह क्रम सहस्रों वर्षों से चला आ रहा है; और कोई कारण नहीं देख पड़ता कि इसकी पुनरावृत्ति निरंतर न होती जाय।

अस्तु। हम यह देख चुके हैं कि हिंदी की तीन प्रधान उपभाषाएँ हैं; अर्थात् अवधी, व्रज भाषा और खड़ी बोली।

व्रज भाषा, अवधी तथा खड़ी बोली का तारतम्य

राजस्थानी और बुंदेलखंडी व्रज भाषा के तथा उर्दू खड़ी बोली के निकटतम है। इन तीनों उपभाषाओं का विवेचन पंडित रामचंद्र शुक्ल ने बड़ी मार्मिकता से किया है। इसलिये हम उनके लेख से ही कुछ अंश उद्धृत करके नीचे देते हैं—

"खड़ी बोली के समान सकर्मक भूतकाल के कर्त्ता में व्रज भाषा में भी 'ने' चिह्न होता है, चाहे काव्य में सूरदास आदि की परंपरा के विचार से उसके नियम का पालन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पूर्ण रूप से न किया जाय। यह 'ने' वास्तव में करण का चिह्न है जो हिंदी में गृहीत कर्मवाच्य रूप के कारण आया है। हेमचंद्र के इस दोहे से इस बात का पता लग सकता है—जे महु दिण्णा दिअहड़ा दइएँ पवसंतेण = जो मुझे दिए गए दिन प्रवास जाते हुए दयित (पति) से। इसी के अनुसार सक० भूत० क्रिया का लिंग वचन भी कर्म के अनुसार होता है। पर और पूरबी भाषाओं के समान अवधी में भी यह 'ने' नहीं है। अवधी के सकर्मक भूत-काल में जहाँ कृदंत से निकले हुए रूप लिए भी गए हैं, वहाँ भी न तो कर्त्ता में करण का स्मारक रूप 'ने' आता है और न कर्म के अनुसार क्रिया का लिंग वचन बदलता है। वचन के संबंध में तो यह बात है कि कारक चिह्नग्राही रूप के अतिरिक्त संज्ञा में बहुवचन का भिन्न रूप अवधी आदि पूरबी बोलियों में होता ही नहीं; जैसे, 'घोड़ा' और 'सखी' का ब्रज भाषा में बहुवचन 'घोड़े' और 'सखियाँ' होगा, पर अवधी में एकवचन का सा ही रूप रहेगा; केवल कारक चिह्न लगने पर 'घोड़न' और 'सखिन' हो जायगा। इस पर एक कहानी है। पूरब के एक शायर जबाँदानी के पूरे दावे के साथ दिल्ली जा पहुँचे। वहाँ किसी कुंजड़िन की टोकरी से एक मूली उठाकर पूछने लगे—"मूली कैसे दोगी ?" वह बोली "एक मूली का क्या दाम बताऊँ ?" उन्होंने कहा—"एक ही नहीं, और लूँगा।" कुँजड़िन बोली —"तो फिर मूलियाँ कहिए।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"अवधी में भविष्यत् की क्रिया केवल तिङन्त ही है जिसमें लिंगभेद नहीं है; पर व्रज में खड़ी बोली के समान 'गा' वाला कृदंत रूप भी है; जैसे, आवैगो, जायगी इत्यादि।

"खड़ी बोली के समान व्रज भाषा की भी दीर्घांत पदों की ओर (क्रियापदों को छोड़) प्रवृत्ति है। खड़ी बोली की आकारांत पुं० संज्ञाएँ, विशेषण और संबंध कारक के सर्वनाम व्रज में ओकारांत होते हैं—जैसे घोड़ो, फेरो, झगड़ो, ऐसो, जैसो, वैसो, कैसो, छोटो, बड़ो, खोटो, खरो, भलो, नीको, थोरो, गहरो, दूनो, चौगुनो, साँवरो, गोरो, प्यारो, ऊँचो, नीचो, आपनो, मेरो, तेरो, हमरो, तुम्हारो इत्यादि। इसी प्रकार आकारांत साधारण क्रियाएँ और भूतकालिक कृदंत भी ओकारांत होते हैं; जैसे, आवनो, आयबो, करनो, देबो, दैबो, दीबो, ठाढ़ो, बैठो, उठो, आयो, गयो, चल्यो, खायो इत्यादि। पर अवधी का कुछ लघ्वंत पदों की ओर झुकाव है जिससे लिंग-भेद का भी कुछ निराकरण हो जाता है। लिंग-भेद से अरुचि अवधी ही से कुछ कुछ आरंभ हो जाती है। अस, जस, तस, कस, छोट, बड़, खोट, खर, भल, नीक, थोर, गहिर, दून, चौगुन, साँवर, गोर, पियार, ऊँच, नीच इत्यादि विशेषण, आपन, मोर, तोर, हमार, तुम्हार सर्वनाम और केर, कन, सन तथा पुरानी भाषा के कहँ, महँ, पहँ कारक के चिह्न इस प्रवृत्ति के उदाहरण हैं। अवधी में साधारण क्रिया के रूप भी लघ्वंत ही होते हैं; जैसे,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आउब, जाब, करब, हँसब इत्यादि। यद्यपि खड़ी बोली के समान अवधी में भूतकालिक कृदंत आकारांत होते हैं, पर कुछ अकर्मक कृदंत विकल्प से लघ्वंत भी होते हैं, जैसे, ठाढ़, बैठ, आय, गय, उ०—बैठ हैं = बैठे हैं।

(क) बैठ महाजन सिंहलदीपी।—जायसी

(ख) पाट बैठि रह किए सिंगारू।—जायसी

"इसी प्रकार कविता में कभी कभी वर्त्तमान की अगाड़ी खोलकर धातु का नंगा रूप भी रख दिया जाता है—

(क) सुनत बचन कह पवनकुमारा।—तुलसी

(ख) उत्तर दिसि सरजू बह पावनि।—तुलसी

"उच्चारण—दो से अधिक वर्णों के शब्द के आदि में 'इ' के उपरांत 'आ' के उच्चारण से कुछ द्वेष व्रज और खड़ी दोनों पछाहीं बोलियों को है। इससे अवधी में जहाँ ऐसा योग पड़ता है, वहाँ व्रज में संधि हो जाती है। जैसे अवधी के सियार, कियारी, बियारी, बियाज, बियाह, पियार (कामिहिं नारि पियारि जिमि—तुलसी), नियाव इत्यादि व्रज भाषा में स्यार, क्यारी, ब्यारी, ब्याज, ब्याह, प्यारो, न्याव इत्यादि बोले जायँगे। 'उ' के उपरांत भी 'आ' का उच्चारण व्रज को प्रिय नहीं है; जैसे, पूरबी-दुआर, कुवाँर। व्रज—द्वार, कार। इ और उ के स्थान पर य और व की इसी प्रवृत्ति के अनुसार अवधी इहाँ उहाँ [(१) इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा। (२) उहाँ दसानन सचिव हँकारे।—तुलसी] के व्रज रूप 'यहाँ' 'वहाँ' और 'हियाँ' 'हुवाँ' के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'ह्याँ' 'ह्वाँ' होते हैं। ऐसे ही 'अ' और 'आ' के उपरांत भी 'इ' नापसंद है, 'य' पसंद है। जैसे, अवधी के पूर्वकालिक आइ, जाइ, पाइ, कराइ, दिखाइ, इत्यादि और भविष्यत् आइहै, जाइहै, पाइहै, करइहै, दिखइहै) (अथवा अइहै, जइहै, पइहै, करइहै, दिखइहै) आदि न कहकर ब्रज में क्रमशः आय, जाय, पाय, दिखाय तथा आयहै, जायहै, पायहै, करायहै, दिखायहै (अथवा अयहै = ऐहै, जयहै = जैहै आदि) कहेंगे। इसी रुचिवैचित्र्य के कारण 'ऐ' और 'औ' का संस्कृत उच्चारण(अइ, अउ के समान) पच्छिमी हिंदी (खड़ी और ब्रज) से जाता रहा, केवल 'य'कार 'व'कार के पहले रह गया, जहाँ दूसरे 'य' 'व' की गुंजाइश नहीं। जैसे, गैया, कन्हैया, भैया, कौवा, हौवा इत्यादि में। 'और' 'ऐसा' 'भैंस' आदि का उच्चारण पश्चिमी हिंदी में 'अवर', 'अयसा', 'भयँस' से मिलता जुलता और पूरबी हिंदी में 'अऊर', 'अइसा', 'भइँस' से मिलता जुलता होगा।

"ब्रज के उच्चारण के ढंग में कुछ और भी अपनी विशेषताएँ हैं। कर्म के चिह्न 'को' का उच्चारण 'कौ' से मिलता जुलता करते हैं। माहिं, नाहिं, याहि, वाहि आदि के अंत का 'ह' उच्चारण में घिस सा गया है, इससे इनका उच्चारण 'मायँ', 'नायँ', 'याय', 'वाय' के ऐसा होता है। 'आवैंगे' 'जावैंगे' का उच्चारण सुनने में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'आमैंगे' 'जामैंगे' सा लगता है। पर मेरी समझ में लिखने में इनका अनुसरण करना ठीक नहीं होगा।

"खड़ी बोली में काल बताने वाले क्रियापद ('है' को छोड़) भूत और वर्त्तमान कालवाची धातुज कृदंत अर्थात् विशेषण ही हैं। इसी से उनमें लिंगभेद रहता है। जैसे, आता है = आता हुआ है = सं० आयान् (आयान्त)। उपजता है = उपजता हुआ है = प्राकृत 'उपजंत = सं० उत्पद्यन्त, उत्पद्यन्। करता है = करता हुआ है = प्रा० करंत = सं० कुर्वन्त, कुर्वन्। आती है = आती हुई है = प्रा० आयन्ती, सं० आयन्ती। उपजती है = उपजती हुई है = प्रा० उपजंती = सं० उत्पद्यन्ती। करती है = करती हुई है = प्रा० करंती = सं० कुर्वन्ती। इसी प्रकार वह गया = स गतः, उसने किया = तेन कृतम इत्यादि हैं। पर व्रज भाषा और अवधी में वर्तमान और भविष्यत् के तिङन्त रूप भी हैं जिनमें लिंग-भेद नहीं है। व्रज के वर्त्तमान में यह विशेषता है कि बोल चाल की भाषा में तिङन्त प्रथम पुरुष क्रियापद के आगे पुरुष विधान के लिये 'है' 'हूँ' और 'हौ' जोड़ दिए जाते हैं। जैसे, सं० चलति = प्रा० चलइ = व्रज० चलै। सं० उत्पद्यंते = प्रा० उपज्जइ = व्रज० उपजै। सं० पठन्ति = प्रा० पठंति, अप० पढ़इं = व्रज० पढ़ैं। उत्तम पुरुष सं० पठामः = प्रा० पठामो, अप० पढ़उँ = व्रज० पढ़ौं या पढ़ूँ। अब व्रज में ये क्रियाएँ 'होना' के रूप लगाकर बोली जाती हैं। जैसे, चलै है, उपजै है, पढ़ैं हैं, पढ़ौं हौं या पढ़ूँ हूँ। इसी प्रकार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मध्यम पुरुष "पढ़ौ हौ" होगा। वर्तमान के तिङन्त रूप अवधी की बोलचाल से अब उठ गए हैं, पर कविता में बराबर आए हैं। उ०—(क) पंगु चढ़ैं गिरिवर गहन, (ख) बिनु पद चलै सुनै बिनु काना। भविष्यत् के तिङन्त रूप अवधी और ब्रज दोनों में एक ही हैं—जैसे, करिहै, चलिहै, होयहै = अप० करिहइ, चलिहइ, होइहइ = प्रा० करिस्सइ, चलिस्सइ, होइस्सइ = सं० करिष्यति, चलिष्यति, भविष्यति। अवधी में उच्चारण अपभ्रंश के अनुसार ही हैं, पर ब्रज में 'इ' के स्थान पर 'य' वाली प्रवृत्ति के अनुसार करिहय = करिहै, होयहय = होयहै इत्यादि रूप हो जायँगे। 'य' के पूर्व के 'आ' को लघु करके दोहरे रूप भी होते हैं—जैसे, अयहै = ऐहै, जयहै = जैहै, करयहै = करैहै इत्यादि। उत्तम पुरुष खयहौं = खैहौं, अयहौं = ऐहौं, जयहौं = जैहौं।

"ब्रज भाषा में बहुवचन के कारक-चिह्न-ग्राही रूप में खड़ी बोली के समान 'ओं' (जैसे लड़कों को) नहीं होता, अवधी के समान 'न' होता है—जैसे, घोड़ान को, घोड़न को; छोरान को, छोरन को इत्यादि। अवधी में केवल दूसरा रूप होता है, पहला नहीं। उ०—देखहु बनरन केरि ढिठाई।—तुलसी।

"खड़ी बोली में कारक के चिह्न विभक्ति से पृथक् हैं। विलायती मत कहकर हम इसका तिरस्कार नहीं कर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सकते । इसका स्पष्ट प्रमाण खड़ी बोली के संबंध कारक के सर्वनाम में मिलता है । जैसे, किसका= सं० कस्य = प्रा० नपुं० किस्स + कारक चिह्न 'का' । काव्यों की पुरानी हिंदी में संबंध की 'हि' विभक्ति (माग० 'ह', अप० 'हो') सब कारकों का काम दे जाती है । अवधी में अब भी सर्वनाम में कारक चिह्न लगने के पहले यह 'हि' आता है। जैसे 'केहिकाँ' (पुराना रूप-केहि कहँ), 'केहि कर', यद्यपि बोलचाल में अब यह 'हि' निकलता जा रहा है । ब्रज भाषा से इस 'हि' को उड़े बहुत दिन हो गए । उसमें 'काहि को' 'जाहि को' आदि के स्थान पर 'काको' 'जाको' आदि का प्रयोग बहुत दिनों से होता है । यह उस भाषा के अधिक चलतेपन का प्रमाण है। खड़ी बोली में सर्वनामों (जैसे, मुझे, तुझे, हमें, मेरा, तुम्हारा, हमारा,) को छोड़ विभक्ति से मिले हुए सिद्ध रूप व्यक्त नहीं हैं, पर अवधी और ब्रज भाषा में हैं । जैसे पुराना रूप-'रामहिं', 'बनहिं, 'घरहिं', नए रूप-'रामै' 'बनै' 'घरै' (अर्थात् राम को, बन को, घर को); अवधी या पूरबी-"घरे" = घर में ।

"जैसा पहले कहा जा चुका है, ब्रज की चलती बोली से पदांत के 'ह' को निकले बहुत दिन हुए । ब्रज भाषा की कविता में 'रामहिं', 'आवहिं' 'जाहिं' 'करहिं' 'करहु' आदि जो रूप देखे जाते हैं, वे पुरानी परंपरा के अनुसरण मात्र हैं । खड़ी बोली के समान कुछ सर्वनामों (जाहि,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वाहि, तिन्हैं, जिन्हैं) में यह 'ह' रह गया है। चलती भाषा में 'रामै' 'बनै' 'आवैं' 'जायँ' 'करैं' 'करौं' ही बहुत दिनों से, जब से प्राकृत-काल का अंत हुआ तब से, हैं। सूरदास में ये ही रूप बहुत मिलते हैं। कविता में नए पुराने दोनों रूपों का साथ साथ पाया जाना केवल परंपरा का निर्वाह ही नहीं, कवियों का आलस्य और भाषा की उतनी परवा न करना भी सूचित करता है। 'आवैं', 'चलावैं' के स्थान पर 'आवहिं' 'चलावहिं' तो क्या 'आवहीं' चलावहीं' तक लिखे जाने से भाषा की सफाई जाती रही। शब्दों का अंग भंग करने का 'कवियों' ने ठेका सा ले लिया। समस्या-पूर्ति की आदत के कारण कवित्त के अंतिम चरण की भाषा तो ठिकाने की होती थी, पर शेष चरण इस बात को भूलकर पूरे किए जाते थे कि शब्दों के नियत रूप और वाक्यों के कुछ निर्दिष्ट नियम भी होते हैं। पर भाषा के जीते जागते रूप को पहचाननेवाले रसखान और घनानंद ऐसे कवियों ने ऐसे सड़े गले या विकृत रूपों का प्रयोग नहीं किया; किया भी है तो बहुत कम। 'आवहिं', 'जाहिं', 'करहिं', 'करहु' न लिखकर उन्होंने बराबर 'आवैं', 'जाँय' 'करैं', 'करौ' लिखा है। इसी प्रकार 'इमि', 'जिमि', 'तिमि' के स्थान पर वे बराबर चलती भाषा के 'यों', 'ज्यों', त्यों' लाए हैं। व्रज की चलती भाषा में केवल सर्व-नामों के कर्म में 'ह' कुछ रह गया है; जैसे, जाहि, ताहि, वाहि, जिन्हैं, तिन्हैं। पर 'जाहि' 'वाहि' के उच्चारण

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

में 'ह' घिसा जा रहा है, लोग 'जाय' 'वाय' के समान उच्चारण करते हैं।

हिंदी की तीनों बोलियों (खड़ी, ब्रज और अवधी) में व्यक्तिवाचक सर्वनाम कारक चिह्न के पहले अपना कुछ रूप बदलते हैं। ब्रज भाषा में विकार अवधी का सा होता है, खड़ी बोली का सा नहीं।

खड़ी	अवधी	ब्रज
मैं–तू–वह	मैं–तैं–वह सो, ऊ	मैं–तू या तैं–वह, सो
मुझ–तुझ–उस	मो–तो वा, ता, ओ।	यो–तो वा, ता

"'ने' चिह्न तो अवधी में आता ही नहीं। ब्रज में उत्तम पुरुष कर्त्ता का रूप 'ने' लगने पर 'मैं' ही रहता है। ऊपर अवधी में प्रथम पुरुष का तीसरा रूप पूरबी अवधी का है। ब्रज में एकवचन उत्तम पुरुष 'हौं' भी आता है जिसमें कोई कारक चिह्न नहीं लग सकता। वास्तव में इसका प्रयोग कर्ता कारक में होता है; पर केशव ने कर्म में भी किया है। यथा—पुत्र हौं विधवा करी तुम कर्म कीन्ह दुरंत।

"'जाना' 'होना' के भूतकाल के रूप (गवा, भवा) में से 'व' उड़ाकर जैसे अवधी में 'गा' 'भा' रूप होते हैं, वैसे ही ब्रज में भी 'य' उड़ाकर 'गो' 'भो' (बहु० गे, भे) रूप होते हैं। उ०—(क) इत पारि गो को, मैया! मेरी सेज पै कन्हैया को?–पद्माकर। (ख) सौतिन के साल भो, निहाल नंदलाल भो।–मतिराम।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"खड़ी बोली करण का चिह्न 'से' क्रिया के साधारण रूप में लगाती है; व्रज और अवधी प्रायः भूतकालिक कृदंत में ही लगाती हैं। जैसे, व्रज० 'किए तें', अवधी 'किए सन' = करने से। कारकचिह्न प्रायः उड़ा भी दिया जाता है, केवल उसका सूचक विकार क्रिया के रूप में रह जाता है; जैसे, किए, दीने।

"क्रिया का वर्तमान कृदंत रूप व्रज भाषा खड़ी के समान दीर्घांत भी रखती है; जैसे, आवतो, जातो, भावतो, सुहातो। (उ०—जब चहिहैं तब माँगि पठैहैं जो कोउ आवत जातो—सूर) और अवधी के समान लघ्वंत भी; जैसे, आवत, जात, भावत, सुहात। कविता में सुभीते के लिये लघ्वंत का ही ग्रहण अधिक है। जिन्हें व्रज और अवधी के स्वरूप का ज्ञान नहीं होता, वे 'जात' को भी 'जावत' लिख जाते हैं।

"खड़ी बोली में साधारण क्रिया का केवल एक ही 'ना' से अंत होनेवाला (जैसे, आना, जाना, करना) होता है; पर व्रज भाषा में तीन रूप होते हैं—एक तो 'नो' से अंत होनेवाला; जैसे, आवनो, करनो, लेनो, देनो; दूसरा 'न' से अंत होनेवाला; जैसे, आवन, जान, लेन, देन; तीसरा 'बो' से अंत होनेवाला; जैसे, आयबो, करिबो, दैबो या लैबो इत्यादि। करना, देना और लेना के 'कीबो' 'दीबो' और 'लीबो' रूप भी होते हैं। व्रज के तीनों रूपों में से कारक के चिह्न पहले रूप (आवनो, जानो) में नहीं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लगते, पिछले दो रूपों में ही लगते हैं। जैसे, आवन को, जान को, दैबे को इत्यादि। शुद्ध अवधी में कारकचिह्न लगने पर साधारण क्रिया का रूप वर्त्तमान तिङन्त का हो जाता है; जैसे, आवइ के, जाइ के, आवइ मे, जाइ में अथवा आवइ काँ, जाइ काँ, आवइ माँ, जाइ माँ। उ०—जात पवनसुत देवन देखा। जानइ कहँ बल बुद्धि बिसेखा। सुरसा नाम अहिन कै माता। पठइन आइ कही तेइ बाता। —तुलसी।

"पूरबी या शुद्ध अवधी में साधारण क्रिया के अंत में 'ब' रहता है; जैसे, आउब, जाब, करब, हँसब इत्यादि। इस 'ब' की असली जगह पूरबी भाषाएँ ही हैं जो इसका व्यवहार भविष्यत् काल में भी करती हैं, जैसे—पुनि आउब यहि बेरियाँ काली।—तुलसी। उत्तम पुरुष (हम करब, मैं करबौं) और मध्यम पुरुष (तूँ करबौ, तैं करबे) में तो यह बराबर बोला जाता है; पर साहित्य में प्रथम पुरुष में भी बराबर इसका प्रयोग मिलता है। यथा—(क) तिन निज ओर न लाउब भोरा।—तुलसी। (ख) घर पइठत पूछब यहि हारू। कौन उतरु पाउब पैसारू।—जायसी। पर ऐसा प्रयोग सुनने में नहीं आया। मध्यम पुरुष में, विशेषकर आज्ञा और विधि में, 'ब' में 'इ' मिलाकर ब्रज के दक्षिण से लेकर बुंदेलखंड तक बोलते हैं; जैसे, आयबी, करबी, इत्यादि। उ०—(क) यह राज साज समेत सेवक जानिबी बिनु गथ लये। (ख) ए

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दारिका परिचारिका करि पालिबी करुनामई ।—तुलसी । यह प्रयोग व्रज भाषा के ही अंतर्गत है और साहित्य में प्रायः सब प्रदेशों के कवियों ने इसे किया है: सूर, बोधा, मतिराम, दास यहाँ तक कि रामसहाय ने भी । जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, जब साहित्य की एक व्यापक और सामान्य भाषा बन जाती है, तब उसमें कई प्रदेशों के प्रयोग आ मिलते हैं । साहित्य की भाषा को जो व्यापकत्व प्राप्त होता है, वह इसी उदारता के बल से । इसी प्रकार 'स्यों' (=सह, साथ) शब्द बुंदेलखंड का समझा जाता है जिसका प्रयोग केशवदास जी ने, जो बुंदेलखंड के थे, किया है; यथा—"अलि स्यो सरसीरुह राजत है" । बिहारी ने तो इसका प्रयोग किया ही है । पर उन्होंने जैसे 'करिवी' और 'स्यो' का प्रयोग किया है, वैसे ही अवधी 'कीन' 'दीन' 'केहि' (=किसने) का प्रयोग भी तो किया है । 'स्यों' का प्रयोग दास जी ने भी किया है जो खास अवध के थे; यथा—स्यो ध्वनि अर्थनि वाक्यनि लै गुण शब्द अलंकृत सों रति पाकी । अतः किसी के काव्य में स्थान विशेष के कुछ शब्दों को पाकर चटपट यह निश्चय न कर लेना चाहिए कि वह उस स्थान ही का रहने-वाला था । सूरदास ने पंजाबी और पूरबी शब्दों का व्यवहार किया है । अब उन्हें पंजाबी कहें या पुरबिया ? उदाहरण लीजिए—"जोग-मोट सिर बोझ आनि कै कत तुम घोष उतारी । एतिक दूर जाहु चलि काशी जहाँ बिकति

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है प्यारी"। 'महँगा' के अर्थ में 'प्यारा' पंजाबी है। अब पूरबी का नमूना लीजिए—(क) गोड़ चापि लै जीभ मरोरी। 'गोड़' (पैर) खास पूरबी हैं।"

हिंदी के विद्वानों में विभक्तियों की उत्पत्ति के संबंध में बहुत मत-भेद है। कोई इसे प्रत्यय मात्र मानते हैं और इसी आधार पर इन्हें मूल शब्दों के साथ मिलाकर लिखते हैं, परंतु दूसरों का मत इसके विरुद्ध है। उनका कहना है कि विभक्तियाँ स्वतंत्र शब्दों से उत्पन्न हुई हैं। जिस रूप में वे इस समय वर्तमान हैं, वह उनका संक्षिप्त रूप है। अतएव हम यहाँ पर यह दिखलावेंगे कि विभक्तियों की व्युत्पत्ति किस प्रकार हुई है।

विभक्ति

(१) कर्ता—जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, कर्ता कारक की विभक्ति किसी किसी आर्य भाषा में नहीं है। हिंदी में जब सकर्मक क्रिया भूतकाल में होती है, तब कर्ता के साथ 'ने' विभक्ति लगती है। यह 'ने' विभक्ति पश्चिमी हिंदी का एक विशेष चिह्न है। पूर्वी हिंदी में इसका पूर्ण अभाव है। यह 'ने' वास्तव में करण का चिह्न है, जो हिंदी से गृहीत कर्मवाच्य रूप के कारण आया है। इसका प्रयोग संस्कृत के करण कारक के समान साधन के अर्थ में नहीं होता। इसलिये हम 'ने' को करण कारक का चिह्न नहीं मानते। करण कारक का चिह्न हिंदी में 'से' है। संस्कृत में करण कारक का 'ना' प्राकृत में एण हो जाता है। इसी 'ना' का हिंदी रूप 'ने' है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

(२) कर्म, संप्रदान कारक—इन कारकों की विभक्ति हिंदी में 'को' है। इन दोनों कारकों के प्रयोग में स्पष्टता न होने के कारण प्रायः उसका परस्पर उलट फेर हो जाता है। यह हिंदी के लिये नई बात नहीं है। करण, अपादान और अधिकरण कारकों में प्रायः परस्पर उलट फेर हो जाता है। संस्कृत में सात कारक हैं—कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, संबंध और अधिकरण। प्राकृतों में संप्रदान का प्रायः लोप हो गया है। साथ ही प्राकृतों में यह भी प्रवृत्ति देखी जाती है कि अन्य विकृत कारकों के स्थान में संबंध का प्रयोग होता है। इस प्रकार कारकों के केवल दो ही प्रत्यय अर्थात् कर्ता और संबंध के रह जाते हैं। अपभ्रंश में इस प्रकार एक कारक को कई का स्थानापन्न बनाने की प्रवृत्ति अधिक स्पष्ट देख पड़ती है। हेमचंद्र ने स्पष्ट लिखा है कि अपभ्रंश में संबंध कारक के प्रत्यय से ही अपादान और संबंध कारक भी बनता है। आधुनिक भाषाओं में कारकों के दो रूप हो जाते हैं—एक कर्ता का अविकृत रूप और दूसरा अन्य कारकों का विकृत अर्थात् कारकग्राही रूप। इससे भिन्न भिन्न कारकों के प्रयोग में स्पष्टता हो जाती है और इसे बनाए रखने के लिये आधुनिक भाषाओं में कारकग्राही रूपों में भिन्न भिन्न विभक्तियाँ लगाई जाती हैं। परंतु प्राकृतों तथा अपभ्रंशों में कारकों के लोप अथवा एक दूसरे में लीन हो जाने के कारण आधुनिक हिंदी में कर्म और संप्रदान तथा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करण और अपादान कारकों की एक ही विभक्ति रह गई है।

बीम्स साहब का कथन है कि यह 'को' विभक्ति संस्कृत के 'कत्ते' शब्द से निकली है, जिसका विकार क्रमशः इस प्रकार हुआ-कक्खं, काखं, काहं, काहँ, काहुँ, कहँ, कौं, कों और अंत में को। दूसरे लोग प्राकृत सर्वनामों में अम्हाकं, तुम्हाकं, अमुको आदि रूपों को लेकर यह सिद्ध करते हैं कि इन्हीं से हिंदी की कर्म, संप्रदान विभक्ति 'को' निकली है। सर्वनामों और संज्ञाओं को एक ही कसौटी पर कसने से काम नहीं चलेगा। आगे जब हम सर्वनामों के विषय में विवेचन करेंगे, तब यह बात स्पष्ट हो जायगी।

संस्कृत की 'कृ' धातु से 'कृत' शब्द बनता है। इस का करण कारक का रूप 'कृतेन' और अधिकरण कारक का 'कृते' होता है। ये दोनों कृतेन और कृते संप्रदान कारक का भाव प्रकट करते हैं; जैसे, देवदत्तस्य कृते = देवदत्त के लिए। हेमचंद्र अपने व्याकरण में लिखते हैं कि अपभ्रंश में 'केहि' विभक्ति आती है, जो कर्म कारक का अर्थ प्रकट करती है। संस्कृत के कृत से अपभ्रंश का 'कअ' होता है, जिसका करण बहुवचन या अधिकरण एकवचन रूप 'कअहीं' या 'कयहीं' होता है। हेमचंद्र जिस 'केहि' विभक्ति का उल्लेख करते हैं, वह वास्तव में इसी 'कअहीं' या 'कयहीं' का विकृत रूप है। इसी 'केहि' से आधुनिक भाषाओं की संप्रदान कारक विभक्तियाँ किहीं, कै, कूं, कौं,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

को, काहु, किनु, गे, खे, कु, के, का आदि बनी हैं। हिंदी में इस 'को' विभक्ति के रूप व्रज भाषा और अवधी में कहँ, काँ, के, कुँ, कूँ, कौं, कउँ और कें होते हैं। इन्हीं 'कहँ', 'कों' आदि से आधुनिक हिंदी की 'को' विभक्ति बनी है। अतएव यह स्पष्ट हुआ कि हिंदी की 'को' विभक्ति संस्कृत के कृते या कृतेन शब्द से अपभ्रंश में 'केहि' होती हुई हिंदी में 'को' हो गई है। कुछ लोग अपभ्रंश की 'केहि' विभक्ति को कर + ही के संयोग से बनी मानते हैं, जो क्रमशः संबंध और संप्रदान कारक के रूप माने जाते हैं।

(३) करण और अपादान—हिंदी में उनकी विभक्ति 'से' है। अधिकांश विद्वान् इसकी व्युत्पत्ति प्राकृत की 'सुंतो' विभक्ति से बताते हैं। प्राचीन हिंदी में अपादान के लिये तें तथा सेंती और हुत, हुते आदि विभक्तियाँ भी आई हैं। यह 'सेंती' तो स्पष्ट सुंतो से निकली है और हुंत, हुते प्राकृत की विभक्ति हिंतो से। पर 'से' के विषय में यह स्पष्ट नहीं कहा जा सकता कि यह भी सुंतो से निकली है। चंद वरदाई के पृथ्वीराजरासो में कई स्थानों पर 'सम' विभक्ति 'से' के अर्थ में आई है। जैसे—

कहै कंति सम कंत (१–११)
कहि सनिकादिक इंद्र सम (२–११०)
बलि लग्गौ जुध इंद्र सम (२–२१८)

यह 'सम' संस्कृत के 'सह' का रूपांतर है और इसी से आगे चलकर सन विभक्ति बनी है, जिसका प्रयोग

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अवधी में प्रायः मिलता है। अतएव यह जान पड़ता है कि सह से सम, सम से सन् तथा सन से 'सौं' 'सें' और अंत में 'से' हो गया है।

(४) संबंध कारक—इसकी विभक्ति 'का' है। वाक्य में जिस शब्द के साथ संबंध होता है, उसे भेद्य कहते हैं; और भेद्य के संबंध से संबंध कारक को भेदक कहते हैं। जैसे, 'राजा का घोड़ा' में 'राजा का' भेदक और 'घोड़ा' भेद्य है। हिंदी में भेद्य इस विभक्ति का अनुशासन करता है और उसी के लिंग तथा वचन के अनुसार इसका भी लिंग और वचन होता है। हिंदी की और किसी विभक्ति में भेद्य या भेदक के लिंग-वचन के कारण किसी प्रकार का विकार नहीं होता। और सब विभक्तियाँ दोनों लिंगों और दोनों वचनों में एक सी रहती हैं; केवल संबंध कारक की विभक्ति में पुल्लिंग एकवचन का रूप 'का', स्त्रीलिंग एक-वचन का रूप 'की' और स्त्रीलिंग और पुल्लिंग दोनों के बहुवचन का रूप तथा भेद्य के कारकग्राही रूप होने से 'के' होता है। इसी विशेषता को ध्यान में रखकर इसकी व्युत्पत्ति का विवेचन करना उचित होगा। इस विभक्ति की व्युत्पत्ति के संबंध में विद्वानों में कई मत हैं, जो नीचे दिए जाते हैं।

(क) संस्कृत में इक, ईन, इय प्रत्यय संज्ञाओं में लगने से तत्संबंधी विशेषण बनते हैं। जैसे काय से कायिक, कुल से कुलीन, राष्ट्र से राष्ट्रीय। 'इक' से हिंदी में का,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'ईन' से गुजराती में 'नो' और 'इय' से सिंधी में 'जो' तथा मराठी में 'चा' होता है।

(ख) प्रायः इसी तत्संबंधी अर्थ में संस्कृत में एक प्रत्यय "क" आता है; जैसे मद्रक = मद्र देश का, रोमक = रोम देश का। प्राचीन हिंदी में 'का' के स्थान में 'क' पाया जाता है, जिससे यह जान पड़ता है कि हिंदी 'का' संस्कृत के 'क' प्रत्यय से निकला है।

(ग) प्राकृत में 'इदं' (संबंध) अर्थ में 'केरओ', 'केरिअ', 'केरकं', 'केर' आदि प्रत्यय आते हैं, जो विशेषण के समान प्रयुक्त होते हैं और लिंग में विशेष्य के अनुसार बदलते हैं। जैसे, कस्य केरकं एदं पवहणं। इन्हीं प्रत्ययों से पृथ्वीराजरासो की प्राचीन हिंदी के केरा, केरो आदि प्रत्यय निकले हैं जिनसे हिंदी के 'का, के, की' प्रत्यय बने हैं।

(घ) प्राकृत इदमर्थ के क, इक, एच्चय आदि प्रत्ययों से ही रूपांतरित होकर आधुनिक हिंदी के का–के–की प्रत्यय हुए हैं।

(ङ) सर्वनामों के रा–रे–री प्रत्यय केरा, केरो आदि प्रत्ययों के आद्य 'क' का लोप हो जाने से बने हैं।

यही भिन्न भिन्न मत हैं। संबंध कारक की विभक्तियों में लिंग-वचन के अनुसार रूपांतर होने के कारण यह स्पष्ट है कि ये विभक्तियाँ वास्तव में विशेषण थीं और उनमें प्रारंभ में कारकों के कारण विकार होता था। अतएव

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'का' विभक्ति का पूर्व रूप भी विशेषण का सा ही रहा होगा। संस्कृत कृ धातु के कृदंत रूप कृतः का अपभ्रंश में केरौ, करौ, किरौ, किअौ, कौ और कयौ होता है। इन अपभ्रंश रूपों को हम दो विभागों में विभक्त कर सकते हैं—

(१) कौ, किअौ, किरौ।

(२) केरौ, करौ।

प्रथम श्रेणी के रूप स्पष्टतः संस्कृत के कृतः से निकले हैं। इसी का शौरसेनी अपभ्रंश रूप 'किरौ' है। द्वितीय श्रेणी में केरौ का प्रयोग तो अपभ्रंश में मिलता है, पर करौ का नहीं मिलता। आधुनिक भाषाओं में इसके मिलने से यह मानना पड़ता है कि या तो इस रूप का प्रयोग था, अथवा यह केरौ से विकृत होकर बना है। बीम्स और हार्नली का मत है कि संस्कृत के कृतः से प्राकृत में करिओ हुआ जिससे केरौ बना। कोई कोई प्राकृत के 'करिओ' को संस्कृत के 'कार्यः' से निकला हुआ मानते हैं। यद्यपि ऊपर दी हुई प्रथम श्रेणी की विभक्तियाँ कृतः से निकली हैं, परंतु 'केर' विभक्ति का शौरसेनी में प्रयोग मिलता है, जिससे इसके प्राचीन रूप की आवश्यकता जान पड़ती है। संभवतः यह पुराना रूप 'करिद' न कि 'करिअ' हो सकता है; पर 'करिद' से 'केर' नहीं निकल सकता। यदि हम इसे 'कार्यः' से निकालते हैं, तो इसके अर्थ की बाधा उपस्थित होती है। कृतः भूत कृदंत का रूप है और कार्यः भविष्य कृदंत का। भूत और भविष्य के भावों में बहुत भेद है;

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अतएव एक ही अर्थ के द्योतक अर्थ को दोनों से निकला हुआ मानना ठीक नहीं। पर संस्कृत में भी इस प्रकार अर्थ का विपर्यय हुआ है। हाँ, केरो और करो को सं० कार्यः, प्रा० करिओ से निकला हुआ मानने में कोई अड़चन नहीं है। अतएव यह स्पष्ट है कि प्रथम श्रेणी के प्राकृत प्रत्ययों से कौ, को, का, के, कु निकले हैं और दूसरी श्रेणी के प्रत्ययों से केरो, केर, कर, क निकले हैं।

(५) अधिकरण कारक—हिंदी में इसका चिह्न 'में' है। यह संस्कृत के 'मध्ये' से निकला है। प्राकृत और अपभ्रंश में इसके मज्झे, मज्झि, मज्झहिं रूप होते हैं। इन्हीं रूपों से आधुनिक भाषाओं की विभक्तियों के दो प्रकार के रूप बन गए हैं—एक वह जिसमें झ बना हुआ है; और दूसरा वह जिसमें झ के स्थान में ह हो गया है। इन्हीं रूपों से मझि, माँझ, मांहैं, माँहीं, माँही, माह, महँ, माँ, मों और में रूप बने हैं।

इस प्रकार हिंदी विभक्तियों की व्युत्पत्ति संस्कृत के शब्दों से हुई है। यहाँ पर हम एक बात पर पुनः ध्यान दिला देना चाहते हैं। हम पहले यह बात लिख चुके हैं कि भारतवर्ष की आधुनिक आर्य भाषाओं के दो मुख्य समुदाय हैं—एक बहिरंग और दूसरा अंतरंग; और एक तीसरा समुदाय दोनों का मध्यवर्ती है। बहिरंग और अंतरंग समुदाय की भाषाओं में यह बड़ा भेद है कि पहली संयोगावस्था में हैं और दूसरी वियोगावस्था में; अर्थात्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पहली के कारक रूप प्रायः प्रत्यय लगकर बनते हैं और दूसरी के कारक रूपों के लिये सहायक शब्दों की आवश्यकता होती है। जैसे हिंदी में कारक रूप बनाने के लिये 'घोड़ा' संज्ञा के साथ विभक्ति लगाकर घोड़े का, घोड़े को आदि बनाते हैं। हम यह दिखला चुके हैं कि ये का, को आदि स्वतंत्र शब्द थे; पर क्रमशः अपनी स्वतंत्रता खोकर अब सहायक मात्र रह गए हैं। इसके विपरीत बँगला भाषा को लीजिए, जिसमें 'घोड़े का' के स्थान में 'घोड़ार' और 'घोड़े को' के स्थान में 'घोडारे' होता है। यहाँ र और रे प्रत्यय लगाकर कारक के रूप बनाए गए हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि एक में स्वतंत्र शब्द सहायक बन जाने पर अपनी अलग स्थिति रखते हैं; और दूसरे में वे प्रत्यय बनकर शब्दों के साथ मिलकर उनके अंग बन गए हैं।

हम पहले बतला चुके हैं कि भाषाएँ अपने विकास की अवस्था में पहले वियोगात्मक होती हैं और क्रमशः विकसित होते होते संयोगात्मक हो जाती हैं। बहिरंग भाषाएँ भी आरंभ में वियोगात्मक अवस्था में थीं; पर क्रमशः विकसित होते होते वे संयोगात्मक हो गईं। अर्थात् प्रथम अवस्था में शब्द अलग अलग रहते हैं और दूसरी अवस्था में वे विकृत शब्दों के साथ मिलकर उनके अंग बन जाते हैं तथा भिन्न भिन्न संबंधों को सूचित करते हैं। कहने का तात्पर्य यही है कि जो पहले केवल संग

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लगे रहते थे, वे अब अंगीभूत हो गए। हम यह बात एक उदाहरण देकर स्पष्ट करते हैं। परंतु ऐसा करने के पहले हम प्राकृत और अपभ्रंश के एक मुख्य नियम पर ध्यान दिला देना चाहते हैं। प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में कुछ व्यंजन, जिनमें क और त सम्मिलित हैं, जब किसी शब्द के बीच में दो स्वरों के मध्य में आते हैं, तब उनका लोप हो जाता है। परंतु यदि वे किसी शब्द के आरंभ में आते हैं, तो उनका लोप नहीं होता, चाहे उनके पूर्ववर्ती शब्द के अंत में स्वर हो और उनके पीछे भी स्वर हो; जैसे, चलति का चलइ होता है। इस शब्द के स्वरों और व्यंजनों को अलग करने से ऐसा रूप होता है—च् + अ + ल् + अ + त् + इ। अब त् अक्षर अ और इ के बीच में आया है; इसलिये इसका लोप हो गया है। एक दूसरा उदाहरण लीजिए—कामस्स तत्त (= कामस्य तत्त्व)। इसमें तत्त के प्रथम त का लोप नहीं हुआ, यद्यपि कामस्स का अंतिम स अकारांत है और 'त' स्वयं भी अकारांत है। यहाँ इसका लोप इसलिये नहीं हुआ कि यह शब्द के आरंभ में आया है। अतएव यह स्पष्ट हुआ कि 'क' या 'त' का लोप तभी होता है, जब वह शब्द के बीच में आता है। शब्द के आरंभ में उसका लोप नहीं होता। अब हम किअ, कर या करौ और तनौ इन तीन प्राचीन शब्दों को लेते हैं जो संबंध कारक के प्रत्यय बन गए हैं। हिंदी 'घोड़े का' अपभ्रंश 'घोड़इ-किअ' से बना है। यहाँ इस

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

किअ्र के 'क' का लोप नहीं हुआ और वह आधुनिक 'का' रूप में 'क' सहित वर्तमान है। अतएव यह 'का' का 'क' एक स्वतंत्र शब्द का आरंभिक अक्षर है, जो 'घोड़े' के साथ मिलकर एक नहीं हो गया है। इसलिये यह कारक चिह्न के रूप में वर्तमान है और व्याकरण के नियमानुसार प्रत्यय नहीं बन गया है। अब बँगला का 'घोड़ार' लीजिए, जिसका अपभ्रंश रूप घोडअ-कर है। इसमें 'कर' का केवल 'अर' रह गया है। यहाँ आरंभिक 'क' का लोप हो गया है। यह 'क' मध्यस्थ होकर लुप्त हुआ है; इसलिये यह स्वतंत्र न रहकर 'घोड़ा' शब्द में लीन हो गया। यहाँ यह कारकचिह्न न रहकर प्रत्यय बन गया। बहिरंग भाषाओं में इस प्रकार के और भी उदाहरण मिलते हैं; पर विस्तार करने की आवश्यकता नहीं है। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, बहिरंग भाषाएँ संयोगावस्था में हैं; अतः उनके कारकों के सूचक सहायक शब्द उनके अंग बनकर उनसे संयुक्त हो गए हैं; और अंतरंग भाषाओं में, उनके वियोगावस्था में रहने के कारण, वे वियुक्त रहे हैं। इस अवस्था में हिंदी के संज्ञा-कारकों की विभक्तियों को शब्दों से अलग रखना उनके इतिहास से सर्वथा अनुमोदित होता है। इस संबंध में जानने की दूसरी बात यह है कि अंतरंग भाषाओं में कारकचिह्न या विभक्ति लगने से पूर्व शब्दों में वचन आदि के कारण विकार हो जाता है; पर बहिरंग भाषाओं में प्रत्यय लग

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जाने पर इन्हीं कारणों से विकार होता है। यहाँ भी एक अपनी स्वतंत्र स्थिति बनाए रखता है और दूसरा अपना अस्तित्व सर्वथा खो देता है।

अब हम हिंदी के सर्वनामों की व्युत्पत्ति पर विचार करेंगे। इनमें विशेषता यह है कि इनमें से कुछ तो संयोगावस्था में हैं और कुछ वियोगावस्था में। एक एक सर्वनाम को लेकर हम इस संबंध में विवेचन करेंगे।

सर्वनाम

(१) **मैं, हम**—संस्कृत के अस्मद् शब्द का करण कारक का रूप संस्कृत में 'मया', प्राकृत में 'मइ' और अपभ्रंश में 'मइँ' होता है, जिससे हिंदी का 'मैं' शब्द बना है। संस्कृत के अस्मद् शब्द के कर्ता कारक का रूप संस्कृत में 'अहं', प्राकृत में 'अम्ह' और अपभ्रंश में 'हउँ' होता है, जिससे हिंदी का 'हौं' शब्द बन है। अतएव यह स्पष्ट है कि कविता का हौं (=मैं) प्रथमा का परंपरागत रूप है और आधुनिक 'मैं' तृतीया से बना है। बहुवचन में संस्कत के वयं का रूप लुप्त हो गया है, यद्यपि प्राकृत में वयं का वअं रूप मिलता है। पर अपभ्रंश में यह रूप नहीं देख पड़ता। बहुवचन में प्राकृत में अम्हे, अम्हो और अपभ्रंश में अम्हइँ अम्हेइँ आदि रूप मिलते हैं। अ का लोप होकर और म—ह में विपर्यय होकर 'हम' रूप बन गया है। कारकग्राही या विकृत रूपों में हिंदी में दो प्रकार के रूप मिलते हैं। एक में तो हिंदी की विभक्ति लगती

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है और दूसरे में नहीं लगती। जैसे कर्म कारक में मुझे, मुझको, हमें, हमको दोनों रूप होते हैं, पर अन्य कारकों में मुझ के साथ विभक्ति अवश्य लगती है। इनमें से मुज्झ और मुज्झे तो प्राकृत और अपभ्रंश दोनों में मिलते हैं, जिनसे मुझ रूप बना है; और मुझे का ए, हि के ह का लोप हो जाने और इ के मुझ में जुड़ जाने से बना है। संबंध कारक में कृतः के केरौ, करौ रूपों के आरंभिक क के लुप्त हो जाने से रो या रा अंश बच रहा है, जो कई भाषाओं में अब तक षष्ठी विभक्ति का काम देता है। इस 'रा' प्रत्यय के 'मे' में लगने से 'मेरा' रूप बनता है और इसके अनुकरण पर बहुवचन का रूप बनता है। सारांश यह है कि अस्मद् से प्राकृत तथा अपभ्रंश द्वारा होते हुए ये सब रूप बने हैं। इनमें विभक्त्यंत प्रत्ययों के लगने से भिन्न भिन्न रूप बनते हैं। परंतु यह ध्यान रखना चाहिए कि कारकग्राही रूपों में मुज्झ रूप स्वयं कारक-प्रत्यय सहित है; पर हिंदी में इस बात को भूलकर उसमें पुनः विभक्तियाँ लगाई गई हैं।

(२) **तू, तुम, आप**—इनमें से तू और तुम रूप मैं और हम के समान ही युष्मद् से बने हैं। संस्कृत के युष्मद् शब्द का कर्ता एकवचन रूप प्राकृत में तुं, तुमं, और अपभ्रंश में तुह होता है, जिससे तू या तूँ और तुम बने हैं। इस प्रकार कारकग्राही रूप भी प्राकृत और अपभ्रंश के तुज्झ रूपों से बने हैं। 'आप' रूप संस्कृत के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आत्मन् शब्द से निकला है, जिसका प्राकृत और अपभ्रंश रूप अप्पण होता है। और जो इसी अथवा अप्पन, अपन आदि रूपों में राजपूताने तथा मध्य प्रदेश आदि में अब तक प्रचलित है। शेष सब बातें मैं और हम के समान हैं।

(३) **यह**—संस्कत के एतद् शब्द के कर्ता का एक-वचन एषः होता है, जिसका प्राकृत में एसो और अपभ्रंश में एहो होता है। इसी से 'यह' के भिन्न भिन्न रूप जैसे, ई, यू, ए, एह आदि बने हैं। इस 'यह' का बहुवचन ये होता है, जो इस एतद् शब्द के अपभ्रंश रूप 'एरा' से बना है। कुछ लोग इस शब्द को संस्कृत के 'इदम्' से भी निकालते हैं, जिसका प्राकृत रूप अयं या इह और अपभ्रंश 'आअ' होता है। इसका कारकग्राही रूप एतद् के प्राकृत रूप एसो, एस, एअस्स, अपभ्रंश 'एइसु' अथवा 'इदम्' के प्राकत रूप एअस्स, इअस्स और अपभ्रंश 'आअसु' से निकला है। संबंध कारक का रूप भी इसी कारकग्राही रूप के अनुसार होता है; उसमें केवल विभक्ति ऊपर से लगती है। सर्वनामों में यह विचित्रता है कि उनका संबंध कारक का रूप संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश के षष्ठ्यंत रूप से बनता है। पर इस व्यापार में कारक प्रत्यय का समावेश शब्द में हो जाता है और पुनः विभक्ति लगती है।

(४) **वह, वे**—ये संस्कृत के अदस् शब्द से निकले हैं जिनका प्राकृत रूप 'अह' 'अम्' और अपभ्रंश रूप 'ओइ' होता है जिससे अ, वै, ओ, वो, वह, उह आदि रूप बने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हैं। कारकग्राही तथा संबंधकारक का रूप प्राकृत 'अमुस्स' से निकला है।

(५) **सो,ते**–ये संस्कृत सः, प्राकृत सो, अपभ्रंश सो से निकले हैं। बहुवचन संस्कृत का 'ते' है ही। कारक-ग्राही तथा संबंध कारक का रूप संस्कृत तस्य, प्राकृत तस्स, तास, अपभ्रंश तासु, तसु से बना है।

(६) **जो**–संस्कृत यः, प्राकृत जो, अपभ्रंश 'जु' 'जो' से सीधे आया है। संबंध का या विकृत रूप यस्य, जस्स-जास, जसु-जासु से निकला है।

(७) **कौन**–संस्कृत कः, प्राकृत को, अपभ्रंश कवणु, से बना है; और **किस**–संस्कृत कस्य, प्राकृत कस्स, कास, अपभ्रंश कासु से निकला है।

(८) **क्या**–संस्कृत किम्, प्राकृत कीआ, अपभ्रंश काइँ और **काहे** प्राकृत के अपादान कारक रूप 'काहे' से सीधा आया है।

(९) **कोई**–संस्कृत कोऽपि, प्राकृत कोवि, अपभ्रंश कोवि, अथवा को + हि के 'ह' के लोप हो जाने से बना है; और **किसी** कस्य, कस्स, कासु + ही (ई) से व्युत्पन्न है।

इन सब सर्वनामों में, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, यह विशेषता है कि इन सब का विकृत रूप षष्ठी या कहीं कहीं सप्तमी के रूप से बना है और उनके आदि कारक-प्रत्यय उनके साथ में लगे हुए रहकर भी आधुनिक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भाषाओं में आकर अपने व्यापार से च्युत हो गए हैं; इसलिये नई विभक्तियाँ लगाकर उन्हें कार्यकारी बनाया गया है। सब के बहुवचन एक ही प्रकार से 'न' या 'न्ह' से बने हैं। ये सब रूप एक ही ढंग से बने हैं। इनका कोई अपना स्वतंत्र इतिहास नहीं है। सब एक ही साँचे में ढले हैं।

क्रियाएँ

आधुनिक हिंदी में वास्तविक क्रियाओं का बहुत कुछ लोप हो गया है। व्रज भाषा और अवधी में तो इनके रूप मिलते हैं, पर खड़ी बोली में यह बात नहीं रह गई है। अब हिंदी में अधिकांश क्रियाएँ दो प्रकार से बनती हैं—एक तो 'है' की सहायता से और दूसरे भूतकालिक कृदंत के रूपों से। 'है' पहले वास्तविक क्रिया थी और अब भी 'रहना' के अर्थ में उसका प्रयोग होता है; जैसे, 'वह है'। पर इसका अधिकतर कार्य दूसरी क्रियाओं की सहायता करके उनके भिन्न भिन्न रूप बनाना तथा कालों की व्यवस्था करना है। जैसे 'वह जाता है', 'मैं गया था' इत्यादि। नीचे व्रज भाषा और अवधी के उदाहरण देकर हम यह दिखलाते हैं कि कैसे उन दोनों भाषाओं में पहले स्वतंत्र क्रियाएँ थीं और अब उनका लोप होकर उनका स्थान कृदंत क्रियाओं ने ग्रहण कर लिया है और उनका कार्य सहायक क्रिया 'है' के द्वारा संपादित होता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पुरुष	संस्कृत	प्राकृत	अपभ्रंश	व्रज भाषा	अवधी	खड़ी बोली
एकवचन						
उ० पु०	चलामि	चलामि	चलौं	चलौं	चलौं	चलता हूँ
म० पु०	चलसि	चलसि	चलहि, चलइँ	चलै	चलै	चलता है
अ० पु०	चलति	चलइ	चलहि, चलइ	चलै	चलै	चलता है
बहुवचन						
उ० पु०	चलामः	चलमो	चलहुँ, चलिहुँ	चल	चलैं	चलते हैं
म० पु०	चलथ	चलह	चलहुँ	चलौ	चलहु	चलते हैं
अ० पु०	चलंति	चलंति	चलहिं, चलइँ	चलैं	चलैं	चलते हैं

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि पहले 'हैं' का भाव क्रियाओं में ही सम्मिलित था, पर पीछे से खड़ी बोली में ये क्रियाएँ कृदंत रूप में आ गईं और भिन्न भिन्न पुरुषों, वचनों, कालों, प्रयोगों आदि का रूप सूचित करने के लिये 'है' के रूप साथ में लगाए जाने लगे। यही व्यवस्था भविष्यत् काल की भी है। पर उसमें भेद यह है कि व्रज भाषा में उसके दोनों रूप मिलते हैं पर अवधी तथा खड़ी बोली में एक ही रूप मिलता है। यह बात भी नीचे लिखे कोष्टक से स्पष्ट की जाती है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

पुरुष	संस्कृत	प्राकृत	अपभ्रंश	व्रज भाषा	अवधी	खड़ी बोली
एकवचन						
उ० पु०	चलिष्यामि	चलिस्समि, चलिहिमि	चलिस्सउँ, चलिहिउँ	चडिँहउँ, चलूँगो	चलिहउँ	चलूँगा
म० पु०	चलिष्यसि	चलिस्ससि,	चलिस्सहि, चलिसइ	चलिहै,	चलिहहि	
		चलिहिसि	चलिहिहि, चलिहिइ, " "	चलैगो		चलेगा
अ० पु०	चलिष्यति	चलिसइ, चलिहिइ	" " " "	चलिहै, चलैगो	चलिहहि	चलेगा
बहुवचन						
उ० पु०	चलिष्यामः	चलिस्सामो, चलिहिमो	चलिस्सहुँ, चलिहिउँ	चलिहैं, चलैंगे	चलिहहिं	चलेंगे
म० प्र०	चलिष्यथ	चलिस्सह, चलिहिह	चलिस्सहु, चलिहिहु	चलिहौ, चलैंगे	चलिहौ	चलोगे
अ० पु०	चलिष्यंति	चलिस्संति, चलिहिंति	चलिस्सहिं, चलिहिहिं	चलिहैं, चलैंगे	चलिहहिं	चलेंगे

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भूत काल के रूप सबसे विचित्र हैं। ये सब संस्कृत के कृदंतों से बने हैं; जैसे, संस्कृत चलितः, प्राकृत चलिओ, अपभ्रंश चलिअ से 'चला' बना है। कृदंत होने के कारण ये विशेषणवत् प्रयुक्त होते हैं; इसलिये इनके रूपों में लिंग और वचन के कारण विकार होता है; जैसे—

पुरुष	ब्रज भाषा		अवधी		खड़ी बोली	
	पुं०	स्त्री०	पुं०	स्त्री०	पुं०	स्त्री०
एकवचन						
उ० पु०	चल्यो	चली	चलेउँ (चल्यौं)	चलिउँ	चला	चली
म० पु०	,,	,,	चलिस, चले (चल्यो)	चलिसि, चली	चले	चली
अ० पु०	,,	,,	चला	चली	चला	चली
बहुवचन						
उ० पु०	चले	चली	चलेन्हि	चलीं	चले	चली
म० पु०	चले	चलीं	चलेहु, (चल्यो)	चलिहु, चलिउ	चले	चली
अ० पु०	चले	चलीं	चलेन्हि	चली	चले	चली

ये उदाहरण साधारण भूत काल के हैं। पर यहाँ यह जान लेना उचित है कि इनका प्रयोग तीन प्रकार से होता है—कर्तरि, कर्मणि और भावे। संस्कृत में 'स चलितः', प्राकृत में 'सो चलिओ', अपभ्रंश में 'सो चलिअ' हुआ, जिससे हिंदी का 'वह चला' बना। यहाँ 'वह' कर्त्ता है और 'चला' कृदंत क्रिया है। कर्ता के अनुशासन में क्रिया के होने से इसका लिंग और वचन कर्ता के अनुसार होता है; जैसे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

 Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वह चला, वे चले, वह चली, वे चलीं। इस प्रकार के प्रयोग को कर्तरि प्रयोग कहते हैं। परंतु यदि क्रिया सकर्मक होती है, तो वहाँ कर्मणि प्रयोग होता है। संस्कृत में 'स मारितः' का अर्थ 'स चलितः' के समान यह नहीं होता कि 'उसने मारा', वरन् उसका अर्थ होता है 'वह मारा गया'। यदि हम यह कहना चाहें कि 'उसने उसको मारा' तो, हमें 'तेन सः मारितः' कहना होगा। यहाँ क्रिया का अनुशासन 'तेन' से न होकर 'सः' से होता है। इसी प्रकार 'वह मास्रो' का अर्थ 'सः मारितः' के समान होगा। परंतु यदि 'उसने मारा' कहना होगा, तो 'वाने मास्रो' कहा जायगा। फिर 'वाने मानुस मास्रो', 'वाने स्त्री मारी' इस प्रकार के प्रयोग होंगे। अतएव यहाँ भी क्रिया का अनुशासन कर्ता नहीं, वरन् कर्म करता है। इस प्रकार के प्रयोगों को कर्मणि प्रयोग कहते हैं। परंतु जहाँ कर्म के साथ 'को' विभक्ति लगा दी जाती है, वहाँ क्रिया स्वतंत्र हो जाती है। जैसे– उसने लड़की को मारा। ऐसे प्रयोग भावे प्रयोग कहलाते हैं। सकर्मक क्रियाओं के साथ या तो कर्मणि या भावे प्रयोग होता है और अकर्मक क्रियाओं के साथ कर्तरि प्रयोग। वर्तमान और भविष्य कृदंतों में केवल कर्तरि प्रयोग होता है।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि हिंदी में कृदंत क्रियाओं का बहुत प्रयोग होता है। इन्हीं से तीन कालों के रूप बनते हैं और 'है' के रूपों को सहायक बनाकर उनका व्यापार स्पष्ट

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

किया जाता है। जैसे–चलता है, चला है, चला था, चलता था, चलेगा। अतएव 'है' क्रिया हिंदी के कालों को सूचित करने के लिये नितांत आवश्यक है। यह 'है' कहाँ से आया, अब इसका संक्षेप में विवेचन किया जाता है।

(१) 'है' की व्युत्पत्ति दो प्रकार से बताई जाती है—एक तो 'भू' धातु से और दूसरी 'अस्' धातु से। भू का प्राकृत और अपभ्रंश में 'हो' होता है; जैसे, भवति, हवइ, हवेइ, होइ, आदि। पर अस् का अच्छ तो होता है, अह नहीं होता। प्राकृतों में थ और ध का तो ह में परिवर्तन हो जाता है, पर स का ह होना नहीं मिलता। परंतु साथ ही हिंदी में अहैं, अहेउँ, अहेस, अहो आदि रूप मिलते हैं, जो भू, हुव, हुअ से तब तक बने नहीं जान पड़ते, जब तक यह न मान लिया जाय कि हुअ से अ का विपर्यय हो गया है, अथवा उसका आगम हुआ है। इस अवस्था में यही ठीक जान पड़ता है कि भू से आधुनिक हिंदी के 'हो' धातु के भिन्न भिन्न रूप बने हैं।

(२) 'था' के विषय में भी विद्वानों में दो मत हैं। कुछ लोग इसकी व्युत्पत्ति स्था धातु से मानते हैं, जिसका प्राकृत और अपभ्रंश में ठा या था रूप हो जाता है। हमारी हिंदी में भी स्थान का थान रूप बनता है। दूसरे लोग कहते हैं कि यह अस् धातु के 'स्थ' रूप से बना है। दोनों कथन उपयुक्त जान पड़ते हैं। पर अभी इस विषय में अधिक खोज की आवश्यकता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

(३) गा—संस्कृत के गम् धातु का कृदंत रूप गतः होता है। इसका प्राकृत गओ या गअ होता है। इसी ग + अ = गा से भविष्यत् काल का चिह्न 'गा' बनता है।

हम यहीं पर यह विवेचन समाप्त करते हैं। हमने मुख्य मुख्य बातों का दिग्दर्शन करा दिया है; भविष्य की खोज का मार्ग भी जहाँ तहाँ दिखा दिया है; और आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं तथा हिंदी के विकास का रूप साधारणतः उपस्थित कर दिया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भाषाओं के विकास का इतिहास भी बड़ा ही मनोरंजक और चित्ताकर्षक है। जिस प्रकार जातियों का उत्थान और पतन होता है तथ भिन्न भिन्न अवस्थाओं के प्रभाव में पड़कर वे अपना रूप बदलती और नए वस्त्राभूषणों से आभूषित होती हैं, उसी प्रकार भाषाएँ भी अपने रूप बदलती हैं। भारतवर्ष की भाषाओं के इतिहास की अभी बहुत कम खोज हुई है; पर इसको लिये सामग्री इतनी उपस्थित है कि एक नहीं सैंकड़ों विद्वानों का वर्षों तक सब समय इसके रहस्यों के उद्घाटन में लग सकता है। जिस प्रकार भारतीय आर्य जाति प्राचीनता के भव्य भाव से गौरवपूर्ण हो रही है और उसका अभी तक कोई शृंखलाबद्ध पूर्ण इतिहास नहीं उपस्थित हो सका है, उसी प्रकार उसकी भिन्न भिन्न भाषाओं की आदि से लेकर अब तक की सब ऐतिहासिक शृंखलाओं का भी पता नहीं लगा है। आशा है, भाषा-विज्ञान के मुख्य मुख्य

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तथ्यों का यह परिचय इस खोज में उत्साह देने और उसे भारतीय भाषाओं की खोज का भावी मार्ग सुगम बनाने में सहायक होगा भारतीय विद्वान ही अपनी भाषाओं के तथ्यों और रहस्यों को भली भाँति समझ सकते हैं; अतएव उन्हें ही इस काम में दत्तचित्त होकर अपने गौरव की रक्षा करना और अपनी भाषाओं का इतिहास स्वयं उपस्थित करना चाहिए।

SPS
809 S 32 H
6450

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

साहित्यालोचन

हिन्दी के परम प्रतिष्ठित विद्वान्, षष्ठ हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के सभापति, हिन्दू विश्वविद्यालय के फेलो (Fellow) तथा हिन्दी के प्रोफेसर और नागरीप्रचारिणी सभा के सर्वस्व श्रीमान् बा० श्यामसुन्दरदास जी बी० ए० ने अँगरेजी और संस्कृत की बीसियों पुस्तकों का अध्ययन करके साहित्य-रत्न-माला की यह पहली पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक में इस बात का बहुत ही पाण्डित्य-पूर्ण विवेचन किया गया है कि कला, काव्य, साहित्य, रस, नाटक, उपन्यास आदि का वास्तविक स्वरूप क्या और कैसा होना चाहिए और उनकी रचना, अध्ययन अथवा आलोचना किस प्रकार होनी चाहिए। साहित्य के विवेचन की देशी भाषाओं में यह पहली अनूठी पुस्तक है। कवियों, लेखकों, सम्पादकों, समालोचकों और साहित्य-प्रेमियों के लिये यह सचमुच एक अमूल्य रत्न है। बड़े बड़े और दिग्गज विद्वानों ने मुक्त-कण्ठ से इसकी प्रशंसा की है। पृष्ठ संख्या लगभग ४००। मूल्य २) राज संस्करण ३)

रामचंद्र वर्म्मा

साहित्य-रत्न-माला कार्य्यालय,

बनारस सिटी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

साहित्य-रत्न-माला की दूसरी पुस्तक

भाषा-विज्ञान

[लेखक—श्रीयुत बा० श्यामसुन्दरदास बी० ए०]

मनुष्य किस प्रकार भाषण करता है, उसके भाषण का किस प्रकार विकास होता है, उसके भाषण और भाषा में कब, किस प्रकार और कैसे कैसे परिवर्त्तन होते हैं, किसी भाषा में दूसरी भाषाओं के शब्द आदि किन किन नियमों के अधीन होकर मिलते हैं, कैसे तथा क्यों समय पाकर किसी भाषा का रूप ही और का और हो जाता है, आदि सैंकड़ों बातें जानना चाहते हों, तो भाषा-विज्ञान नामक पुस्तक पढ़िए। इस पुस्तक के पढ़ने से आपको यह भी पता लग जायगा कि भारत के आदिम आर्य्यों की भाषा से किस प्रकार आजकल की देश भाषाओं का विकास हुआ है। इस पुस्तक में संस्कृत, पाली, प्राकृत, पैशाची, अपभ्रंश तथा आधुनिक देश-भाषाओं का पूरा पूरा इतिहास और विकास दिया गया है। विशेषतः हिन्दी भाषा के विकास का बहुत ही अच्छा विवेचन किया गया है। इस एक ही पुस्तक को पढ़कर आप अनेक विषयों के अच्छे ज्ञाता हो जायँगे। पृ० सं० ४०० से ऊपर। मूल्य ३)

रामचंद्र वर्म्मा

साहित्य-रत्न-माला कार्य्यालय, बनारस सिटी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

For Ambekar Sports & Allied Stores

Manager / Partner

For Ambekar Sports & Allied Stores

Manager / Partner

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust

CC-0. In Public Domain. Funding by MoE-IKS